हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका १२ वाँ ग्रन्थ।

अन्नपूर्णाका मन्दिर।

[अतिशय पवित्र, प्रभावशाली और करुण-रसपूर्ण सामाजिक उपन्यास]



अनुवादकर्त्ता—

स्व० पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्मा, मिश्र।



प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, बम्बई।



अगहन, १९८४ वि०।



दिसम्बर, १९२७।



चतुर्थावृत्ति] [मूल्य एक रुपया

राजसंस्करणका १।।)

प्रकाशक—
श्री नाथूराम प्रेमी, प्रोप्रायटर,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव-बम्बई।

मुद्रक—
मंगेश नारायण कुलकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,
३१८ ए, ठाकुरद्वार, मुंबई २.



वक्तव्य।

(प्रथमावृत्तिसे।)

यह पुस्तक बंगलाकी प्रसिद्ध उपन्यासलेखिका श्रीमती निरुपमादेवीके 'अन्नपूर्णार मन्दिर' का भाषान्तर है। मूलपुस्तकको बंगला-साहित्यमें बहुत ऊँचा आसन प्राप्त हुआ है। लोक उसकी शतमुखसे प्रशंसा कर रहे हैं। एक वर्षके भीतर ही उसकी कई हजार प्रतियाँ बिक गई हैं। बंगाल इम्पीरियल लायब्रेरीके अनुवादक श्रीयुक्त बाबू शरच्चन्द्रसेनने इस पुस्तकका अँगरेजी अनुवाद कर डाला है। आपकी राय है कि इन दिनों किसी भी बंगला उपन्यासलेखकने इससे अच्छा उपन्यास नहीं लिखा। हमको विश्वास है कि हिन्दीके पाठक भी इसकी प्रशंसा किये बिना न रहेंगे और इसकी हिन्दीके श्रेष्ठ उपन्यासोंमें गणना की जायगी।

यह मूल पुस्तकका शुद्ध भाषान्तर है। इसमें मूलके कथानकका, पात्रोंके नामादिका, रीति-रवाजोंका और भावोंका जरा भी परिवर्तन नहीं किया गया है। हम चाहते हैं कि पाठक इसमें उपन्यासके रसके आस्वादनके साथ साथ बंगाली समाजका परिचय भी प्राप्त करें।

अनुवादका संशोधन बहुत परिश्रमके साथ किया गया है और मूल पुस्तकके भावोंकी रक्षा यथेष्ट सावधानीके साथ की गई है। इतने पर भी यदि पुस्तकमें कुछ दोष रह गये हों तो उनके लिए हम पाठकोंसे क्षमाप्रार्थी हैं।

हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवि बाबू मैथिलीशरणजी गुप्तके हम बहुत ही कृतज्ञ हैं जिनकी कृपासे हमें इस ग्रन्थका पता लगा और जिनके प्रयत्नसे हमें इसके प्रकाशित करनेकी अनुमति प्राप्त हुई।

हम श्रद्धास्पदा श्रीमती निरुपमादेवी और उनके अग्रज श्रीयुक्त विभूतिभूषण भट्ट महाशयका हृदयसे उपकार मानते हैं जिन्होंने हमें ग्रन्थके प्रकाशित करनेके लिए उदारतापूर्वक आज्ञा देनेकी कृपा दिखलाई।

सितम्बर १९१५। प्रकाशक।

अन्नपूर्णाका मन्दिर ।

पहला परिच्छेद ।

गाँवके पास ही एक निर्मल जलवाली नदी बहती है। गर्मीका मौसिम होनेके कारण यद्यपि उसकी धार पतली पड़ गई है तो भी उसमें बड़ी तेजी है। नदीके तीरपर बाबू लोगोंका फलका बाग़ है जिसमें नारियल, ताल आदिके पेड़ अपने ऊँचे ऊँचे मस्तकोंको ऊपर आसमानमें उठाये हुए चुपचाप खड़े हैं। हाँ, प्रदोषकालकी मधुर मन्द वायुके लगनेसे कभी कभी एकाध बार सिर हिला देते हैं। शिवजीका मंदिर पेड़ोंकी आड़में एक बारगी छिप गया है, केवल उसके ऊपर लगा हुआ पीतलका त्रिशूल पश्चिममें पहुँचे हुए सूर्य भगवान्‌की लाल लाल किरणोंके पड़नेसे बड़ी उज्ज्वल शोभा दिखा रहा है।

अभीतक लोगोंका आना जाना शुरू नहीं हुआ है, केवल एक लड़की बाबू लोगोंके बँधवाये हुए पक्के घाटकी चिकनी और चौड़ी सीढ़ियोंपरसे नीचे उतर रही है। उसकी बगलमें पीतलका घड़ा और कन्धेपर धोती और गमछा है। अन्तिम सीढ़ीपर पहुँचकर बालिकाने एक बार चारों ओर दृष्टि फेरी और वह थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ी रही; ऐसा मालूम होता था मानों किसीको खोज रही हो।

जिसकी बाट देख रही थी उसे आया न देख बालिकाने सूखा वस्त्र घाटपर रख दिया और आप जलमें पैठी। जलमें जा अनमनी

सी होकर पानी मुँहमें ले-लेकर कुल्ला करने लगी । इसी समय घाट-पर एक और बालिका आकर खड़ी हुई । प्रथमा बालिकाको इस प्रकार अन्यमनस्क देखकर वह धीरे धीरे सीढ़ी तैकर नीचे उतरी । उसके धीरेसे कुछ शब्द करते ही प्रथमा बालिकाने चौंककर पीछेकी ओर मुड़कर देखा और फिर हँसकर कहा, "ओह ! मैं तो सहम गई थी!" दूसरी बालिका तानेके साथ बोली, "डरोगी क्यों न भला? नन्हीं नादान बिटिया ठहरीं! ऐसी अनमनी हो रही हो कि मेरा आना भी तुम्हें नहीं मालूम हुआ । कबसे आई हुई हो?"

पहली लड़की—थोड़ी ही देर हुई । आज तुम्हारे आनेमें इतनी देरी क्यों हुई? और दिन तो तुम्हीं पहले आ पहुँचती थीं ।

"देरका कारण कहती हूँ; पर पहले तुम तो कहो कि इतनी दुचित्ती सी होकर क्या सोच रही हो?"

पहली लड़कीने मुसकराकर कहा, "और क्या सोचूँगी?"

"क्या सोचोगी?" कहते हुए दूसरी लड़कीने अपनी सखीकी देह-पर पानी छिड़क दिया, तो भी वह अपना कपड़ा धोती रही । यह देख दूसरीने उसका वस्त्र पकड़कर कहा, "कहो, तुम्हें कहना ही पड़ेगा।"

पहली लड़कीने कुछ नाराज होकर कहा, "आह! यह क्या करती हो! छोड़ दो।"

दूसरीने कपड़ा छोड़ दिया और अभिमानसे दूसरी ओर मुँह फेर लिया ।

प्रथमा बालिकाको तब अपनी करनीपर कुछ पछतावासा हुआ; कहने लगी—"सखी! जाओ तुम तो बातोंहीमें रूठ जाया करती हो । तुम्हें, ऐसा नहीं चाहिए । अच्छा जाने दो, मुझसे कसूर हुआ माफ करो । जो पूछना हो पूछो, मैं बतलाये देती हूँ।"

दूसरी—पूछती तो यही हूँ कि आज इस तरह मुँह क्यों बनाये हुई थीं ?

पहली—नई बात तो कुछ नहीं है। हमारे घरका हाल तो तुम जानती ही हो, फिर बार बार पूछकर क्यों लज्जित करती हो ?

लापर्वाहीसे हँसती हुई दूसरी लड़की बोली, "ओह ! यही दुःख है ? मैंने समझा कि शायद—"

प०—हाँ, सखी ! तुम ऐसा न कहोगी तो और कौन कहेगी ?

प्रथमा अपनी बात पूरी भी न करने पाई थी कि दूसरी लड़की बीचमें ही बोल उठी, "अगर तुम्हें मेरी तरह चिन्ता होती तो न जाने क्या करतीं; पर मैं तो तुम्हारी तरह सूखकर काँटा नहीं हो गई हूँ।"

प्रथमा बालिकाने द्वितीयाके मुखकी ओर अपनी बड़ी बड़ी आँखें फेरीं। उस समय ऐसा मालूम हुआ मानों किसी चतुर चित्रकारने प्रकृतिकी शोभा चौगुणी करनेके लिए एक सुन्दर सलोनी प्रतिमा लाकर नदीके बीचमें स्थिर भावसे खड़ी कर दी है। मृदुल वायुके स्पर्शसे दो चार बिखरे हुए बाल उसके कपोलोंपर थिरक रहे थे। नदीने अपने नीले और स्वच्छ दर्पणपर वह मूर्ति मानों अंकित कर रक्खी थी। हीनतेज सूर्यकी लाल किरणोंने उस चित्रके सौन्दर्य्यको और भी कई गुना बढ़ा दिया था। भाग्य देवताके हृदयमें दयाधर्म हो चाहे नहीं, पर प्रकृतिका हृदय सदा करुणासे पूर्ण रहता है।

बालिकाने मीठे स्वरसे कहा, "कमला, भला तुम्हें कौनसा दुःख है ? तुम तो बड़े घरकी लड़की हो। तुम्हें हरतरहका सुख है—धन है; दौलत है; बाप, माँ, भाई, बहिन सभी कुटुम्बी प्रसन्न और हँसमुख रहते हैं; उनकी कोई डाँट-डपट तुम्हें सहनी नहीं पड़ती; तुम जानती नहीं कि दुःख किस चिड़ियाका नाम है। फिर भला तुम्हें किस बातका कष्ट है ?"

" क्या मुझे कोई दुःख हो ही नहीं सकता ? संसारमें क्या गरीब होना ही सब दुःखोंसे बढ़कर है ? "

बालिकाको यह बात सहन न हुई। वह बोली, " सो मैं कैसे कहूँ ? "

यह बालिकाकी प्रकृतिके विरुद्ध था कि अपनी दरिद्रताकी बात इधर उधर कहती फिरे; वह चुप हो रही।

कमला बोली, " सती ! सोच विचार कर देखो ! और सब कष्ट तो सहजमें ही दूर हो सकते हैं पर जिसका मन दुखी है उसका दुःख दूर होना कठिन है। "

ऊपरी हँसी हँसकर सती बोली, " मालूम होता है कि तुम्हें कोई मानसिक कष्ट है। "

" मैं बड़े घरकी लड़की हूँ, मुझे तकलीफ क्यों होने लगी ? "

" बहन, साफ साफ कहो क्या बात है ? मैंने जो कुछ पहले कहा उसे भूल जाओ। गलती हुई। "

" तुम्हें तो मालूम ही होगा कि मेरा विवाह होनेवाला है। "

" विवाह ! सो कब ? "

" एकाध महीनेमें ही हो जायगा, लेकिन किसके साथ होगा सो मत पूछना। "

सती मुसकरा कर बोली, " सो मुझे मालूम है। विशू भैयाके साथ न ?"

क०—नहीं बहन, ऐसा होता तो फिर चिन्ता ही क्या थी ? आज और जगह सम्बन्ध होनेकी बातचीत हुई है।

सती चौंक पड़ी और बड़े अचरजके साथ बोली, " तुम तो अब तक कहा करती थीं कि विशू भैयाके सिवा और किसीसे ब्याह ही नहीं करूँगी, फिर यह क्या हुआ ? क्या तुम्हारे मातापिताकी राय वहाँ शादी करनेकी नहीं है ? "

क०—वहाँकी तो कभी बात भी नहीं चली, उन बेचारोंका अपराध ही क्या है ?

स०—तब मालूम होता है कि तुम अपने ही जीसे वैसी बात कहती थी । ओह, कैसी शर्म्मकी बात है ! बहन, कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ?

क०—लाज-शर्म करते करते तो मैं मर गई । मेरी जब ऐसी ही इच्छा है तब भला कहूँ कैसे नहीं ?

स०—तो अब क्या करोगी ? मालूम होता है कि मातापितासे सब बातें तुम्हें कहनी पड़ेंगी ?

क०—यही तो सोचती हूँ । लेकिन ऐसा करनेके पहले उनका मन भी तो टटोल लेना चाहिए जिनका मन थाहनेकी सबसे बढ़-कर जरूरत है । उनके मनका हाल कैसे मालूम होगा ?

कमलाके मुँहकी ओर देखती हुई सती आश्चर्यके साथ बोली, " किसके मनका हाल जानना जरूरी है ? विशू भैयाके मनका ? छिः सखी, तुम्हारा भी बड़ा साहस है ! ऐसी शर्मकी बात तुम्हारे मुँहसे कैसे निकलती है ?"

कमला विस्मय और विरक्तिके स्वरमें बोली, " इसके सिवाय दूसरा उपाय ही क्या है ? मालूम होता है कि तुमने आजतक कोई किताब नहीं पढ़ी । "

सती जरा उदास होकर बोली, " रामायण तो बराबर बाँचती हूँ । "

व्यंगभरी हँसी हँसकर कमलाने कहा, बस रामायणमें ही सारे जहानकी विद्या समाप्त हो गई ? अच्छा, ये सब बातें रहने दो । आज क्या घूमती फिरती मेरी तरफ आओगी ? अगर चाहो तो मैं खूब बढ़िया बढ़िया किताबें पढ़नेके लिए दे सकती हूँ । मेरे पास अच्छी अच्छी किताबें हैं । "

सती थोड़ी देर चुप रही। उसके मनमें इस बातका ख्याल हो आया कि मेरी और कमलाकी अवस्थामें क्या अन्तर है। बड़ी हिम्मत करके उसने कहा, " नहीं, मुझे किताबें नहीं चाहिए।"

" किताब नहीं लोगी न सही; पर मेरी तरफ आओगी तो ?"

" सो भी नहीं कह सकती। अगर चाची कुछ बक-झक न करेंगी, तो जरूर ही आ जाऊँगी।"

" तुम्हारी माँ तो बहुत भलीमानुस है, फिर तुम्हारी चाची इतनी चिड़चिड़ी क्यों हैं ?"

" मालूम नहीं। अब चलती हूँ। रास्तेमें बहुत लोग आते जाते हैं।"

दोनों जल्दी जल्दी सीढ़ी तैकर ऊपर आईं। घड़ा उठानेमें सतीको तकलीफ होती है यह देख कमला बोली, " इतना बड़ा घड़ा क्यों लाईं ? जरा छोटा लाई होतीं।"

" लाऊँ नहीं तो काम कैसे चले ?"

" चलेगा क्यों नहीं ? तुम्हारी माँ या चाची ले जायँगी।"

" जो काम उनके किये हो सकता है वह मेरे लिये क्यों न होगा ?"

" और तुम्हारी बहिन सावित्री है, वह भी तो ले जा सकती है ?"

" वह तो अभी जरासी है।"

कमला ओठ फुलाकर बोली, " ओह हो ! बड़ी नादान बिटिया है ! अरे, बहुत तो तुमसे एक दो वर्ष छोटी होगी।"

" सखी ! ऐसी बात मत कहो। वह मेरी अपेक्षा बहुत कुछ सहती है। जान रक्खो, वैसी लड़की तुम्हारे जैसे बड़े लोगोंके घर होना असम्भव है। वह छोटे भाईके सारे उपद्रव बर्दाश्त करती है; बड़े भाईकी झिड़कियाँ और डाँट-डपट, चाचीकी सारी बक-झक सुन कर भी वह कुछ नहीं बोलती। पिताकी कुल आज्ञाओंको वह

मानती और उनके कहे अनुसार चलती है। उसका सौवाँ हिस्सा भी मुझसे नहीं बन पड़ता। गरीबकी बेटी है, इससे उसके इन गुणोंपर तुम लोगोंकी नजर नहीं जाती।"

कमला कुछ चिढ़सी गई और चुप हो रही। सतीके साथ उसकी एक अद्भुत प्रकारकी प्रीति थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह सतीको कष्ट पहुँचानेके लिए बात नहीं कहती है; केवल अभ्यास-दोषसे उसके मुँहसे अभिमानभरी बातें निकल आती हैं। सती भी बिना मुँह खोले उसकी बात मान लेती हो सो बात नहीं है; वह भी कमलाको दो-चार खरी-खोटी सुना ही देती है। सती बड़ी अभिमानिनी है। अगर अन्यायकी बात कोई कहे तो वह सुनकर चुप रह जानेवाली नहीं है। इस तरह दोनोंमें हरदम छेड़-छाड़ हुआ ही करती थी; तो भी एकका दूसरीपर देरतक क्रोध न ठहरता था।

कमला चिढ़ी भी, खिसिया भी गई, लेकिन बहुत देरतक चुप न रह सकी। बोली, "खैर जाने दो, मैंने तुम्हें गरीब ही समझकर वैसा कहा; लेकिन तुम भी तो मुँहतोड़ जवाब देनेमें कम नहीं हो!"

उसके मुँहकी ओर निहारती हुई सती मुसकराकर बोली, "तुम भी क्यों नहीं दो चार सुना देतीं?"

"मैं तुमसे कहाँ पार पा सकती हूँ? खैर यह तो कहो, हमारे घर कब आओगी?"

"किसी दिन अवश्य आऊँगी।"

"सो नहीं होगा। तुमसे बहुत सी सलाहें करनी हैं। तुम्हारे आये बिना काम नहीं चलेगा। जितनी जिल्दी हो सके आना, समझीं?"

"अच्छा, आऊँगी।"

कमला तारापुरके प्रसिद्ध जमीन्दारके घरकी लड़की है। बड़े बाबूकी बड़ी प्यारी कन्या है और बड़े सुखसे लालित पालित हुई है।

रामशंकर भट्टाचार्य नामक एक दरिद्र ब्राह्मणकी कन्या सतीके साथ उसकी क्यों इतनी गहरी मिताई हो गई, यह कहना जरा कठिन है। सचमुच दरिद्रके साथ धनवान्की मेल-मुहब्बतकी बात सुनकर सबको आश्चर्य होता है। सतीके संग सखीत्व करनेके कारण कमलाके घरके लोग उसे बहुत कुछ बुरा भला कहते थे और दरिद्र मनुष्योंका धनियोंके प्रति जो गूढ विरुद्ध भाव और अभिमान देखा जाता है, उसके वशमें आकर सतीके घरके लोग भी इस मैत्रीके कारण उसकी निन्दा करते थे। यह बात दोनों ही ओरके लोगोंकी आलोचनीय बातोंमेंसे एक हो गई थी; पर इतने पर भी एक दूसरीका साथ नहीं छोड़ती थी। इस घटनाके सम्बन्धमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि सौन्दर्य, समान वयस और बालोचित संग-लिप्सासे जो रमणीके प्रति रमणीका आकर्षण होता है, उसीके कारण यह विचित्र मैत्री भी हुई। कमला १३ और सती १२ बरसकी लड़की है, इसीसे एक गरीब और दूसरी अमीरकी लड़की होने पर भी अभी तक उनका प्रेम बना हुआ है।

कमला घर आकर चारपाईपर लेट रही। सचमुच ही विवाहका निश्चय सुनकर उसके मनमें बड़ी उदासी छा गई थी। आज ३ वर्षसे वह निरन्तर अपने विवाहकी ही बात सोच रही है। जिस दिन नदीमें स्नान करते समय वह पानीमें कुछ दूर बह गई थी, उस दिन विश्वेश्वरने ही उसे जलसे बाहर निकाला था। यह बात सतीके सिवाय और किसीको भी मालूम न थी। इस घटनाके बाद कमलाने जितनी पुस्तकें पढ़ीं उन सबोंमें ऐसे स्थलोंमें एक ही बात होती दिखाई दी। विश्वेश्वर देखनेमें अच्छा है, नौजवान है, अपनी बिरादरीका है और अभी तक कुँआरा है। वह भी धनीकी कन्या है, सुन्दरी है, कुमारी है। ऐसी अवस्थामें पहले प्रेम और पीछे विवाह

होना अवश्यंभावी है। यद्यपि मुँह खोलकर एकने दूसरे पर इस प्रेमकी बात प्रगट नहीं की; क्योंकि एक तो विश्वेश्वरका घर दूर है, उसके यहाँ उसका आना जाना भी नहीं होता और ऊपर लिखी घटनाके बाद कभी दोनोंकी मुलाकात भी नहीं हुई; तथापि ऊपर कहे नियमके अनुसार उसे प्यार करनेके लिए वह बाध्य है। उसे प्यार करना ही चाहिए। वह प्यार करती भी है। फिर भला, विश्वेश्वर उसे क्यों न प्यार करेंगे? यद्यपि विवाहकी बातचीत चल रही है और उस बातचीतमें विश्वेश्वरका पता ठिकाना नहीं है, तो भी इससे क्या? ऐसा अनेक पुस्तकोंमें लिखा देखा है कि पहले तो वियोग कल्पान्तस्थायी मालूम होता है; परन्तु पीछे किसी न किसी तरह मिलन हो ही जाता है। जिस पुस्तकमें ऐसा मिलन नहीं होता, उसके लेखकको कमला भरपेट गाली देती है और जीवन-नाटकमें वैसा मनहूस शेषांक देखना वह पसन्द नहीं करती।

कमला लेटे-ही-लेटे न जाने कितनी बातें सोचती रही। एक दाई उसे खाना खानेके लिए बुलाने आई, पर उसे उसने खदेड़ दिया और भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिये। एक नई किताब आई हुई थी। उसे खोलकर उसने जल्दी जल्दी उसका अन्तिम पृष्ठ खोला—देखा, नायक नायिका दोनों बड़े मजेसे गृहस्थी चला रहे हैं। तृप्तिकी एक गहरी साँस ले कमला चारपाईपर लेटे-लेटे किताब पढ़ने लगी। पढ़ते पढ़ते उसका मन उसमें खूब लग गया। निदान नायक नायिकाके दुःखसे दुःखित होकर वह सो गई; किताब छातीपर ही रक्खी रही। पर पुस्तक पढ़ते पढ़ते कब और कैसे उसे नींद आ गई, इस बातको वह उस समय तक कुछ भी यादमें न ला सकी जब कि एक दासीके साथ उसकी माताने आकर दरवाजा खटखटाकर उसे जगा न दिया।

दूसरा परिच्छेद ।



अभी अभी सबेरा हुआ है। अपनी टूटी राम-मँड़ैयाके दरवाजे-पर बैठे हुए अकालवृद्ध रामशंकरभट्टाचार्य्य तम्बाकू पी रहे हैं। निकट ही छतकी कड़ीमें लटकते हुए पींजरेमसे तुरतकी जगी हुई मैना बारबार 'राम! राम!' 'हरे कृष्ण! हरे कृष्ण!' इत्यादि नाम ले रही है और भट्टाचार्यजीके खाँसनेकी नकल कर रही है। पुराने छाये हुए रसोईघरके पास राख-पातकी ढेरीपर सोया हुआ कुत्ता नाक बजा रहा है। आँगनके बीचोंबीच आमके पेड़ तले खूँटेसे बँधी हुई गाय अपने बछड़ेकी देह चाट रही है। चारों ओर शान्ति फैली हुई है। हवा भी धीरे धीरे चलकर आँगनके एक कोनेमें खड़े हुए केलोंके पत्तोंको हिला रही है; लेकिन ऐसे आहिस्तेसे हिलाती है कि झाड़ एकदम काँप नहीं उठते। भट्टाचार्यजी अपने मनमें यही सोच रहे हैं कि सभी निश्चित और स्थिर हैं। केवल मनुष्यका ही चित्त इतना उद्विग्न, ऐसा चञ्चल क्यों है? पक्षी आनन्दसे पढ़ता है, नकल करता है। गाय बच्चेपर प्यार करती है। कुत्ता बे-खबर पड़ा सो रहा है। इनके मनमें चिन्ताका लेश नहीं है। ये भी तो खाते पीते हैं; पर अपने पेटके लिए इन्हें जान नहीं लड़ानी पड़ती। ये शायद इसी लिए बेफिक्र रहते हैं कि आदमी तो इनके लिए चिन्ता करता ही है। इसी तरह यदि आदमीके लिए भी कोई और फिक्र करनेवाला होता तो कैसा अच्छा होता? मनुष्यको ही क्यों अपने पेटके लिए आप चिन्ता करनी पड़ती है और संसार चलाना पड़ता है? पृथ्वी ऐसी पक्षपात-भरी क्यों है? जिसके होनेसे उसका गौरव है उसी मनुष्य जातिपर उसकी इतनी कम करुणा क्यों है?

भट्टाचार्यजीने सोचते ही सोचते धुयेंकी एक विशाल कुण्डली बना दी। इस समय टूटे-फूटे कंकाल मात्र बचे हुए ईंटोंवाले मकानका द्वार खोल कर एक रमणी बाहर आई। वह सुर्ख पाड़की एक महीन साड़ी और हाथमें उजले रंगकी काचकी चूड़ियाँ पहने हुए थी। ललाटमें सिन्दूर शोभा पा रहा था। इसी सामान्य वेशमें वह रमणी थी; पर उसकी सादगीने उस स्थलकी शोभा बढ़ा दी। रमणीने कुएँसे जल निकालकर घर द्वारमें छिड़क दिया और साफ-सुथरे तुलसी-चौंतरेको हाथसे लीप दिया। इसके बाद वह हाथ धोकर एक छोटा जल और दाँतुवन ला स्वामीके आगे रख बोली, "इतने सबेरे उठ बैठे? रातको छातीमें दर्द था, फिर भी इतनी सर्दी क्यों खा रहे हो?"

भट्टाचार्यजी बिगड़कर बोले, "चूल्हेमें जाय छातीका दर्द! मृत्यु भी आती तो समझता कि चलो बड़ी बलासे जान बची। बिना मरे मेरा निस्तार नहीं।"

सती साध्वी नारी मन-ही-मन दुःखित हो चुपचाप खड़ी निहारती रही। भट्टाचार्यजी भी इधरसे आँखें फेर आमके पेड़की ओर देखने लगे। स्त्री धीरे धीरे बोली, "मुँह धो लो।"

"मुँह पीछे धोऊँगा, पहले यह तो बतलाओ कि घरमें चावल दाल है या नहीं?"

स्त्रीने चुपचाप सिर हिला दिया। स्वामी उद्धत स्वरसे बोले, "जमीन बेचकर जो रुपया पाया था, वह क्या सब खतम हो गया?"

"रुपया ही कितनासा मिला था? तीन महीने उसीपर तो कटे, अब और कितने दिन तक चलता?"

"नहीं चले तो अब मैं क्या करूँ? क्या भीख माँगूँ?"

स्त्रीने बिना कुछ कहे अपनी आँखोंके आँसू पोंछ डाले। स्वामी अनखाकर बोले, "तुम लोगोंको तो बस रोना ही आता है। अगर

रोनेसे ही काम चलता होता तो मैं भी खूब रोता। इतना कहकर वे फिर जरा नम्रस्वरसे बोले, "आज मैं कहीं नहीं जा सकता, इस लिए जैसे हो वैसे आजका काम तो चलाओ। कल देखा जायगा।"

भट्टाचार्यजी उठकर नित्यक्रियाके लिए चले गये। स्त्री जरा लम्बी साँस ले एक झाडूसे आँगन बुहारने लगी और हाँक देकर पुकारने लगी—"सती! सती!!"

किवाड़ खोलकर और आँखें मलते मलते बाहर निकलकर एक कुसुमकलीसी बालिका वहीं ड्योढ़ीमें आ खड़ी हुई। माँको आँगन साफ करते देखकर वह बोली, "क्या कहती हो, माँ?"

"क्या सती अभीतक उठी नहीं है? जरा वह आँगनमें झाड़ू देती तो मैं पानी खींचने जाती।"

"मैं ही पानी खींच लाती हूँ।" यह कह कर वह बालिका कुएँकी ओर चली। माँने उसे रोक कर कहा, "नहीं बेटी! इतना बड़ा घड़ा तुझसे न उठेगा, मैं ही चली जाती हूँ।"

बालिका माँकी कही न मान पानी भरने चली गई। बेचारी जाह्नवी बहुत न बोलती थी; दो एक बार मना करने पर भी जब लड़कीने न माना तब चुपचाप अपना काम करने लगी।

जाह्नवीकी विधवा जेठानी भी इसी समय, आँगनमें आ खड़ी हुई और दोनों माँ-बेटीको काममें लगी देख जोरसे बोल उठी, "दोनों माँ-बेटी खूब मन लगाकर काम कर रही हैं। यह खबर नहीं है कि आज घरमें भूँजी भाँग भी नहीं है। बबुआजी कहाँ गये? बाजार क्यों नहीं जाते? काली उठकर खानेको माँगेगा तो क्या दिया जायगा? कल ग्वालिन भी दूध नहीं दे गई। दे भी कैसे जाय? तुम लोगोंका तो यह हाल है कि बेचारीको सात जन्ममें भी दाम मिलनेकी आशा नहीं! वह गरीबिनी कब तक दूध दिया करेगी?"

दबी जबानसे जाह्नवीने कहा, "जीजी! इस घड़ी इस तरहकी बातें मत करो। अभी वे बड़े दुखी हो कर गये हैं, सुनेंगे तो उनको और भी दुःख होगा। हम लोगोंका तो यह रोजका हाल है। और ग्वालिनकी बात जो कहती हो सो उसका तो ज्यादा पावना भी नहीं है। बस, इसी महीनेका है।"

जेठानीजी झुँझलाकर बोलीं, "यह एक ही महीनेका क्या कुछ कम है? तुम लोगोंसे तो अच्छी बात कहो तो बुरा बनना पड़ता है। कोई बात ही कहने लायक नहीं है। मुझे क्या पड़ी है कि किसीसे कुछ कहूँ? यह इसी लिए कहा था कि दूध बन्द होनेसे बच्चेको तकलीफ न हो। जाय मरे, मुझे क्या?" यह कहते कहते वे गायको भूसा देने चलीं। अब उनके मनका क्रोध बाहर उमड़ आया। बोलीं "अभागिन मुँहजली गाय! बछड़ा बड़ा हो गया, इससे अब यह भी दूध न देगी; सिर्फ ठूँस ठूँस कर खाया करेगी। भाड़में जाय ऐसी गाय!"

उदास मुँहसे सावित्री बोली, "बेचारी खानेको भी पाती है कि दूध ही देगी?"

जेठानीजीने उसकी बातपर ध्यान नहीं दिया और सोये हुए कुत्तेकी पीठपर जोरसे एक लाठी जमा दी। बेचारा कायँ कायँ करता हुआ भागा। रंग बेरंग देखकर बेचारी मैना चुप हो रही। सामने और किसीको न देखकर जेठानीजी मैनाको चुप देख कहने लगीं "अभागे घरकी अभागिन मैना भी सबेरे सबेरे रामका नाम नहीं लेती।" और भी न जाने क्या क्या अण्डबण्ड, जो झोंकमें आया, बक गईं। इस गड़बड़से सतीकी नींद टूट गई। वह बाहर आ सभीको जगा हुआ देखकर कोमल स्वरसे बोली, "ओह! इतना

दिन चढ़ आया ! ” बात जेठाजीनीके कानमें पहुँची । बोल उठीं, “ अरी, एक चिराग तो लारी, बेचारी लड़कीको अँधेरेमें दिखलाई नहीं पड़ता । ” सती अपना दोष समझकर उधर कुछ ध्यान न दे चुप हो रही और माताको उठाकर आप बर्त्तन माँजने लगी । जाह्नवीने कहा—“ तो अब मैं नहाने जाती हूँ । ”

“ जाओ । ”

भट्टाचार्यजी ज्यों ही हाथ मुँह धोकर आये त्यों ही सोलह वर्षका बालक हरिशंकर आकर बोला “ और दूसरी किसी बातमें तो अकल नहीं चलती, मगर एक रोज पाठशाला न जाऊँ तो सिर खा जाते हो ! दस लड़कोंके सामने नंगे पाँव कैसे जाऊँ ? मुझे आज ही जूता खरीद दो । ”

जाह्नवी भी आ पहुँचीं । उसने पुत्रका हाथ धरकर कहा, “ बेटा, आज यह सब रहने दो । अभी ऐसे ही जाओ । इसके बाद—”

“इसके बाद क्या ? इस तरहसे कबतक चलेगा ? मुझे आज ही जूता चाहिए । ”

भट्टाचार्यजी गरज कर बोले, “ गरीबके लड़केकी इतनी नवाबी ? ‘ बापके पग पनही नहीं पूतको घोड़ा चाहिए । ’ अरे बाबा, जैसी जिसकी अवस्था है, उसे वैसा ही रहना चाहिए । मैं क्या तुम लोगोंके लिए चोरी करूँ ? ”

मौका देख जेठानीजी झिड़ककर बोल बैठीं, “ सो वे सब क्या जानें ? यदि नहीं देते तो लड़केके बाप क्यों हुए ? लड़का स्याना हुआ, सबके सामने सिर नवा कर रहता है, तुम्हें लज्जा नहीं मालूम होती ? ” तीन बरसका कालीशंकर माताका अञ्चल पकड़कर बोला, “ माँ, खानेको दे ! भूख लगी है ! ”

भट्टाचार्यजी घरके भीतर जा अलगनीपर टँगी हुई अपनी चादर कन्धेपर रख बाहर जाने लगे। जाह्नवी उनके पीछे पीछे घरके भीतर आई; उन्हें जाते देख बोली, "चादर लेकर कहाँ चले?"

भट्टाचार्यजी दूसरी ओरको मुँह किये हुए जाने लगे। छोटे बच्चेको गोदमें ले उनके पीछे पीछे आँगनतक आकर जाह्नवीने कहा, "कहाँ, जा रहे हो?"

"जाता हूँ कुछ उपाय करने। अगर कुछ ठीक ठिकाना हुआ तो लौटूँगा, नहीं तो बस यही आखिरी समझो।" यह कह कर भट्टाचार्यजी घरके बाहर चले गये।

जाह्नवीका गला भर आया। वह जेठे लड़केसे कहने लगी, "बेटा! हरि! जा देख आ, वे कहाँ जा रहे हैं! समझा-बुझाकर लौटा ला। जा—जाता क्यों नहीं?"

"जायँगे कहाँ? आप ही लौट आना पड़ेगा। मैं तो अब चाँद-पुर जाता हूँ। नरेन्द्र बाबूके पास रहूँगा। उन लोगोंने मुझसे कितनी दफे वहाँ रहनेके लिए कहा; पर मैं तुम लोगोंका ख्याल कर उनकी बात टाल देता था। अब मैं यहाँ हरगिज़ नहीं रह सकता। आजसे जो इस घरका अन्नजल ग्रहण करे वह चमार है। लो मैं अब जाता हूँ।"

जाह्नवी बेचारीको तो काठ मार गया। उधरसे सती भी वर्तन माँजना छोड़कर दौड़ी हुई आई और बोली, "राम राम! भैया! तुम्हें यह क्या हो गया है? तुम्हारी सुधबुध एक बारगी जाती रही क्या? तुम लोग इस तरहसे हम लोगोंको छोड़ जाओगे तो हम लोगोंकी क्या गति होगी? जाओ, जाकर बाबाको बुला लाओ।"

"तुम लोगोंके जो जीमें आवे करो, मैं तो अब चला।" यह कहता हुआ हरिशंकर भी घरसे बाहर हो गया।

सावित्रीने दौड़कर भाईके दोनों हाथ पकड़ लिये और कहा, "भैया, तुम्हारे पाँवों पड़ती हूँ, बाबाको मत जाने दो। जाकर उन्हें समझा बुझाकर बुला लाओ।"

बालिकाको जोरसे एक ओर ठेलकर हरिशंकर चल दिया। जाह्नवी बच्चेको गोदमें ले चुपचाप आँगनमें बैठ रही; वह मुँहपर घूँघट डाले हुए थी। हाथमें बर्त्तनोंकी कालिख लगाये सती चित्र-लिखी सी खड़ी रह गई। सावित्री घरमें जाकर झाड़ू देने लगी। हाथसे काम कर रही थी, पर आसुओंके मारे दिखाई न देता था। इधर जेठानीजी जोर जोरसे चिल्लाकर गाँव भरके आदमियोंको अपने घरका हाल जता रही थीं।

रामशंकर चित्तकी व्याकुलतासे गाँवका रास्ता छोड़ खेतोंमेंसे होकर जाने लगे। वे मानों ठीक अपनी नाककी सीध पर चल रहे थे। मिट्टीके बड़े बड़े ढोकोंसे पैरोंमें रह-रहकर ठोकरें लगती थीं—काँटे चुभचुभ जाते थे; पर इधर उनका ध्यान न था। पासहीके खेतमें परसन अहीर बैठकर सोहनी कर रहा था। वह रामशंकरकी सूरत देख बोला, "भट्टाचार्यजी महाराज! पाँयलागन। इधर कहाँ?"

"यमराजके यहाँ" कहकर रामशंकर आगे बढ़े। इसी समय फिर किसीने पूछा, "भट्टाचार्य महाशय, किधरको जाना होता है?"

ब्राह्मणने ऊपर सिर उठाकर देखा कि उन्हींके गाँवका विश्वेश्वर है। वह घुटनेपरका कपड़ा ऊपर उठाये ढेलोंको फोड़ता हुआ उन्हींकी ओर आ रहा था। ब्राह्मण खड़ा हो रहा। उन्होंने किसीसे भेंट होजानेके ही डरसे राह छोड़ कुराह ली थी; किन्तु तो भी जान न बची।

विश्वेश्वरने निकट आकर बड़े आदरके साथ पूछा, "कहाँ जा रहे हैं?"

" कुछ ठीक नहीं । जिस ओरको पैर उठते हैं उसी ओर चला जा रहा हूँ । किसी दिशापर मेरा पक्षपात नहीं है । तुम देख ही रहे हो।"

" इधर तो आदमीके आने जानेकी राह नहीं है; फिर आप इस तरफ कहाँ जायँगे ?

" आदमी क्यों नहीं आते जाते; तुम भी तो इधरहीसे चले जा रहे हो ! "

" मेरी बात छोड़ दीजिए । सीधी राहसे लौटनेमें देर होगी, यही सोचकर इधरसे जा रहा हूँ । "

" बस, मेरे बारेमें भी यही समझ लो । "

" मैं तारापुरके महाजनोंकी कोठीपर गया था, कुछ काम था । लौटते समय नजदीकके ख्यालसे इसी राहसे चला आया । "

" मैं भी कामसे ही जा रहा हूँ; बिना कामके शौकसे ढेले फोड़-नेके लिए इधर कोई क्यों आने लगा ! "

" नहीं, आप कुछ छिपाते हैं । अगर कहने लायक हो तो साफ साफ कह डालिए । बात छिपानेसे कुछ लाभ नहीं । संकोच मत कीजिए ।"

" संकोच कैसा, भैया ! "

" मैं यदि आपकी कुछ भलाई कर सका, तो अपनेको बहुत ही कृतार्थ समझूँगा । "

रामशंकरजीने एक बार स्थिर नेत्रोंसे युवाकी ओर देखा । उसके मुख-पर उदारता और आग्रहके भावोंके सिवा और किसी तरहके व्यंग या छलका चिह्न मात्र भी दिखाई न दिया । वे बड़ी मुलाभियतसे बोले, " तुम बड़े अच्छे लड़के हो । ऐसी बात तुम्हारे योग्य ही है । पर मैं क्यों तुम्हारा उपकार ग्रहण करूं ? मैंने किसका उपकार किया है जो मैं किसी दूसरेका उपकार ग्रहण करूँ ? "

"उपकारके बदलेमें नहीं—स्नेहके वश हो, प्रेमभावसे, आप मुझसे कुछ सेवा लें।"

"इस बातको जाने दो; सुनो—मैं आज कामधन्देकी फिक्रमें घरसे निकला हूँ। अगर घरभरके खर्चका प्रबन्ध न हो सका तो कमसे कम अपने पेटसे तो निश्चिन्त हो जाऊँ।"

ब्राह्मणकी बात सुन विश्वेश्वर काँप गये। व्यग्र कण्ठसे बोले, "अच्छा अगर आप मेरा उपकार नहीं ग्रहण करेंगे तो चलिए, तारापुरकी कोठीमें दस रुपए महीनेके एक कर्मचारीकी आवश्यकता है, वहीं काम कीजिए।"

"आजसे ही काम करनेको तैयार हूँ, लेकिन इस महीनेका वेतन पेशगी आज ही मिल जाना चाहिए।"

"अच्छा; चलिए।"

दोनों चल पड़े। विश्वेश्वरने दूसरी ओर मुँह फेर कर एक लम्बी साँस ले ली। वे भट्टाचार्यजीकी भीतरी अवस्था ताड़ गये थे।

तीसरा परिच्छेद ।



विश्वेश्वर एक ग्रामीण युवक हैं। उनके पिता गाँवके बड़े मालदार आदमी थे। लेकिन उनकी रहन-सहन बिलकुल सीधी सादी थी। गाँवभरके लोग उनका नाम 'मच्छड़' 'मक्खीचूस' आदि रक्खे हुए थे। उनका मकान एकतल्ला था, पर बड़ा लम्बा-चौड़ा था। गाय-बछड़ा, बैल-गाड़ी आदिसे उनकी गोशाला भरी पूरी रहती थी। धान, जौ, गेहूँ आदि अनाजोंसे उनका अन्नागार भी परिपूर्ण रहता था; पर नौकर

चाकर, दाई मजदूरिन, रसोइया आदिकी उनके यहाँ प्रचुरता न थी; जैसी कि अमीरोंके यहाँ रहती है। उनकी बैठकमें मेज, कुर्सी, आइना, आलमारी आदि भी न थे। बिलकुल सीधे सादे ग्रामीण गृहस्थका घर था।

लेकिन सब लोग बूढ़ेको 'रुपयेका कीड़ा' कहते थे। परिवारमें उनके केवल एक लड़का था जिसका नाम विश्वेश्वर है और उसकी मौसी अन्नपूर्णा थी। लोग कहते हैं कि बुढ़ियाके पास भी बड़ी सम्पत्ति है। मातृहीन विश्वेश्वरको पालनेके लिए जब वह नारायणचन्द्र मैत्रेयके घर आई, तब लोगोंका हृदय ईर्ष्यासे उथल-पुथल होने लगा।

नारायणचन्द्र अपने लड़के विश्वेश्वरको कभी अपनी आँखोंकी ओट न होने देते थे। इसीसे विश्वेश्वर गाँवके स्कूलमें केवल एण्ट्रेन्स तक ही पढ़ सके; किन्तु लोगोंका कहना है कि यद्यपि वे विश्वविद्यालयमें नहीं पढ़े, तथापि उनकी शिक्षा पूर्णरूपसे हुई। संस्कृतके अनेक विद्यार्णव, विद्यावागीश, तर्कचञ्चु और सरस्वती आदि उपाधिधारी पंडित उनके संस्कृत ज्ञानके आगे हार मानते हैं। कहते हैं कि एक दफा एक 'एम० ए० पास' इनके यहाँ पहुँचे थे जो इनके कोई रिश्तेदार होते थे। वे इस देहाती युवकके असाधारण बहुभाषाज्ञानको देखकर चकित हो गये थे। इस प्रकारके अनेक प्रवाद इनके विषयमें गाँवके लोगोंमें फैले हुए थे। पर गाँवकी स्त्रियोंमें उनके इन गुणोंकी चर्चा न थी, क्यों कि वे जानती थीं कि विश्वेश्वर बड़ा मुँहचोर, भला मानुस और सीधा सादा लड़का है।

यह कहना अनुचित न होगा कि विश्वेश्वरकी सूरत प्रायः ही बाहर नजर नहीं आती। अपनी बाईस वर्षकी अवस्थाका अधिक भाग उन्होंने अपने घरकी कोठरीमें ही बिताया है। इतनी बड़ी उम्र हो गई, पर अपने समवयस्क साथियोंके साथ आवारा-गश्ती करने या लम्बीचौड़ी

गपोड़ेबाजी करनेका अनुभव उन्हें नहीं। १६ वर्षकी उम्रमें एण्ट्रेन्स पास करके जब उन्होंने स्कूल छोड़ दिया, तबसे वे रातदिन अपने कमरेमें ही रहा करते हैं। स्नानादि आवश्यक कार्योंको छोड़ और किसी कामसे वे बाहर नहीं निकलते। अन्तःपुरके जिस कमरेमें वे बैठते हैं, वहाँ कोई जाने नहीं पाता। अगर कोई जाता है, तो देखता है कि तख्तेपर ढेरकी ढेर किताबें पड़ी हुई हैं और चटाईपर पड़े पड़े विश्वेश्वर एक मनसे कोई किताब पढ़ रहे हैं। पुस्तकें समाचारपत्रादि खरीदकर मँगवानेमें उनके पिता अपनी कंजूसी भूल जाते थे और अपने पुत्रकी इस पुस्तक-प्रीतिपर अपने मनमें बड़ा सुख मानते थे। संसारकी कोई असाधारण चिन्ता उन्होंने अपने पुत्रके मनमें न आने दी थी। उनकी इच्छा थी कि पुत्रका विवाह कर दूँ और उसे सब समझाबुझाकर शेष जीवन काशीवास करके बिताऊँ; किन्तु एकाएक यमराजकी नोटिस पहुँच गई, इस लिए उनकी यह इच्छा मनकी मनहीमें रह गई। पुत्रको एक प्रकारसे सब कुछ समझा-बुझाकर और उसका हाथ उसकी मौसीको पकड़ाकर वे एक दिन अपने जीवन-नाटकका अन्तिम अभिनय समाप्त कर गये।

पिताके मरनेपर विश्वेश्वरको चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा दिखने लगा। उन्हें साहित्यकी एकान्त कोठरीसे निकालकर और संसारमें एकबारगी असहाय और अकेला छोड़कर पिता न मालूम कहाँ चले गये, विश्वेश्वरका मानों नया जन्म हुआ। किन्तु वे संसारकी झंझटमें बहुत नहीं पड़े। उनके पिता इस तरहसे अपना सब कुछ ठीक रखते थे कि विश्वेश्वरको किसी तरहकी कठिनाई नहीं मालूम हुई और उन्होंने पुस्तकें खरीद खरीद कर बेटेके मस्तकको जैसा तैयार कर दिया था, उससे विश्वेश्वरको भी अपनी जर-जमीन्दारी सम्हालनेमें दिक्कत न हुई। इससे

पहले वे जिस प्रकार साहित्यसागरमें अवगाहन करते थे उसी प्रकार स्वच्छन्द भावसे संसारमें भी रहने लगे। संसारके समस्त कार्योंका पर्य्यवेक्षण करनेपर भी उन्हें बोध होने लगा कि मेरे पास बहुत समय है। अब वे इसी उपायमें लगे कि इस समयका कैसा उपयोग किया जाय। कारबार बढ़ानेके इरादेसे उन्होंने बहुतसी नई जमीन्दारी खरीदी और एक बाग लगवाकर उसके उन्नतिसाधनमें बराबर लगे रहकर उसे खूब बढ़िया बनवा दिया। आज कल वे नदीके किनारे बहुतसी जमीन लेकर न जाने किस अभिप्रायसे एक बड़ासा घर बनवा रहे हैं। इधर उन्हींकी कृपासे गाँवकी भवानीका टूटा हुआ मन्दिर नया बन गया है। लुप्तावशेष रामसागरकी सब मिट्टी निकलवा दी गई है और इससे उसमें फिर लबालब पानी भर गया है। महिमापुरका टूटा हुआ बाँध हर साल गाँवमें पानी भर देता था, जिससे गाँव डूबने लगता था; वह भी फिरसे बाँधा गया है। यह सब कौन करता है सो सबको मालूम नहीं है; तो भी किसी किसीका कहना है कि यह महामक्खीचूस नारायणचन्द्रके रुपयोंकी सद्गति हो रही है! कोई कोई परहिताकांक्षी साधु विश्वेश्वरको बुलाकर समझाते हैं—"बाबू, दूसरोंके काममें ही अपना दाम क्यों भगा रहे हो? कोई जुदा ही काम क्यों नहीं करते जिससे नाम भी हो और पुण्य भी हो?" विश्वेश्वर उनकी बात उड़ाकर कह देते हैं—"इतनी बड़ी बड़ी कीर्तिके काम करना मेरी शक्तिके बाहर है। दो चार दस रुपयेमें जो काम हो जाय वही बहुत है।" जो जरा बुद्धिमान होते वे उनकी यह बात सुन कहते "लेकिन इन कार्योंमें भी तो आपका बहुत रुपया लगा है।" उनकी इस बातको उपेक्षाकी दृष्टिसे देख विश्वेश्वर उत्तर देते थे—"कहाँ! मेरे पास अधिक रुपया है ही कहाँ, जो लगाता हूँ?"

विश्वेश्वरकी मौसी उनके पिताके मरनेके बाद अबतक बड़े मजेसे गिरिस्ती चला रही थी; किन्तु सहसा उन्हें एक दिन कुछ कमी मालूम हुई। उनकी इच्छा हुई कि उनका यह छोटासा, शून्य, दुःखसुखभरा परिवार नई दुलहियाके आगमनसे नूतनतामय हो जाय। इसलिए वे एक दिन अपने पुत्रस्थानीय विश्वेश्वरसे बोलीं, " विश्वेश्वर, मेरी एक साध है।"

" क्या मौसी ?

" सबके घर देखो न कैसी छोटी छोटी दुलहिनें उजाला किये हुए हैं, सिर्फ मेरा ही घर सूना है।"

" कहो, क्या करूँ ? आदमी तो चाकपर गढ़ा नहीं जाता; भगवानने जो चीज दी नहीं, उसके लिए उपाय ही क्या है ?"

" कुछ भी हो, एक आदमीको तो गढ़कर लाना ही पड़ता है; मुझे भी एक छोटीसी बहू ला दे।"

अपनी मौसीकी इस साधकी बातको सुनकर विश्वेश्वर हँसते हँसते लोटपोट हो गये। किसी तरह उनकी हँसी रुकती ही न थी। मौसी क्रोधित हो बोली, " इतना हँसता क्यों है ? अब घरमें बहू लानी ही पड़ेगी, नहीं तो लोग निन्दा करेंगे।"

" मौसी, अपनी नाक कटाकर दूसरेकी यात्राके कार्यमें अपशकुन करना मनुष्यका स्वभाव है। बतलाओ न दूसरेकी लड़की घरमें क्यों लाऊँ! बैठेबैठाये एक जंजालमें पड़ जाना! हमीं दोनों मा-बेटे घरमें रहें, इसमें कौनसी बुराई और निन्दाकी बात है ?"

" बुराईकी बात क्यों नहीं ? किन्तु यदि एक मनुष्य और भी अपने घर आजाय तो भी तो बुराई न होगी—यह तो और भी आनन्दकी बात होगी।"

" एक ओर आगया तो फिर कहोगी कि एक ओर आ जाय, तो अच्छा हो। इसी तरह एकपर एककी चाह बढ़ती ही रहेगी। मनुष्यकी इच्छा घटती नहीं, बराबर बढ़ती ही जाती है। इससे तो यही अच्छा है कि भगवानने जिन्हें जन्मसे साथ रक्खा है वे ही आनन्दसे रहें।"

" ऐसा पगला लड़का नहीं देखा। अब मैं तेरी एक नहीं सुननेकी। मैं तेरे लिए लड़की ठहराती हूँ।"

" सो तुम्हारी इच्छा। एक नहीं हजार लड़की ठहराओ। कहो तो मैं भी दो चारके नाम तुम्हें बतलाऊँ!"

" अच्छा बतला न। मैं उन्हींमेंसे किसी एकको देख सुनकर पसन्द करूँगी।"

" वाह! एकको पसन्द करोगी और बाकी बचेंगी उन्हें लौटा दोगी? सो नहीं होगा। लेना हो तो सब ले लो, जिसमें मारे बहुओंके घरमें रहनेकी भी जगह न रहे और चारों ओर झकाझक हो जाय!"

" यह सब पागलपनकी बातें रहने दे। सच कह कि ब्याह करेगा या नहीं?"

" तुम मेरी रायसे थोड़े चलती हो। तुम जितनी बहुएँ चाहो लाके घरमें रख दो। लेकिन मैं तुमसे पहले ही कह रखता हूँ कि एक बार मैं भारतभरके प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरों और तीर्थोंको देखनेके लिए जाऊँगा। तुम्हारे मुँहसे काशी वृन्दावनकी बात सुन सुन कर मेरा जी ललचाया करता है। अबके स्वयं उन सब जगहोंको देख आऊँगा तो तुमको हराऊँगा। उन स्थानोंको देखे बिना तुम्हारी बातोंमें पेश पाना कठिन है। सबसे पहले पिताका गया-श्राद्ध करना होगा, सो तुम्हें भी मेरे साथ साथ चलना होगा, नहीं तो मैं मार्गमें भूखों मर जाऊँगा।"

"मैं कब कहती हूँ कि तेरे साथ न जाऊँगी? मैं तुझे कभी अकेला छोड़ सकती हूँ? परन्तु ब्याह बाद ही अगर गया चलें तो क्या हर्ज है?"

"अच्छा तुम बैठी बैठी ब्याहका बन्दोबस्त करो, मैं अकेला ही जाऊँगा।"

"अगर तू ही चला जायगा तो मैं किसके ब्याहका प्रबन्ध करूँगी?"

"सो तुम जानो!"

"बाप रे बाप! ऐसा हठी लड़का तो कहीं देखा नहीं। अच्छा, चल, पहले यही सब निपट जाय!"

बात यहीं समाप्त हो गई। साँझको विश्वेश्वर अपने बगीचेमें टहल रहे थ, इसी समय उन्हें एक लड़की दिखाई दी। वह एक छोटेसे मिट्टीके घड़ेमें पानी भरकर लिये जा रही थी। राह सकरी थी, इस लिए वह विश्वेश्वरको आते देख एक ओर हट कर खड़ी हो गई। इसी समय उसके काटा लग गया। यह देख विश्वेश्वर बोले, "इस तरह कुराह क्यों जा रही हो? रास्तेपर आकर खड़ी रहो! उधर साँप बिच्छुओंका भी डर है!"

बालिका तनिक हसकर बोली "तब आप ही क्यों नीचे गढ़ेमें उतर रहे हैं?"

विश्वेश्वर उसकी इस बातका उत्तर न देकर "सीधी राहसे जाओ" कह कर उसकी बगलसे होकर आगे निकल गये। बालिका चुपचाप खड़ी रही। कुछ दूर आगे जाकर विश्वेश्वर जब रास्तेके मोड़से घूमने लगे, तब उन्होंने देखा कि बालिका अब भी उसी जगह चुपचाप खड़ी है। विश्वेश्वर आश्चर्य्यमें आकर थोड़ी देरके लिए ठहर गये। देखा, वह बालिका उन्हींकी ओर निहार रही है। ज्यों ही चार आँखें

हुई त्योंही उसने अपनी नजर नीची कर ली। सहसा उनके मनमें आया कि हो सकता है कि बालिकाको मुझीसे कुछ काम हो। दूसरे ही क्षण उनको स्मरणसा हुआ कि बालिकाकी सूरत उनकी पहचानी हुई है। वह कौन है, किसकी कन्या है, सो तो उन्हें याद नहीं आया; लेकिन यह निश्चय हो गया कि उसे उन्होंने दो चार बार देखा जरूर है। कौतूहलके साथ विश्वेश्वर बालिकाके पास लौटकर चले आये और बोले, "तुम किसकी लड़की हो?"

"भट्टाचार्यजीकी।"

"कौन भट्टाचार्यजी? रामशंकरजी?"

"हाँ।"

विश्वेश्वरने देखा, बालिका और कुछ नहीं कहती, इस लिए लाचार हो लौट पड़े। स्वयं किसीसे कोई बात पूछना उनके स्वभावके विरुद्ध था। कोई अगर उनसे कुछ कहनेके लिए आवे और संकोचसे कह न सके तो उनसे भी संकोचके मारे कुछ पूछते नहीं बन पड़ता। वे स्वयं सिर नीचा किये चुप बैठ जाते हैं। हाँ, उस दिन भट्टाचार्यजीसे उन्होंने जो उतनी बातें की थीं, इसका कारण यह था कि उन्होंने जो अपनी मौसीसे उन लोगोंकी दुरवस्थाकी बात सुन रक्खी थी वह उनके तरुण और कोमल हृदयमें गड़ गई थी। उन्होंने मनमें यह भी सोच रक्खा था कि किसी सूरतसे रामशंकर या उनके पुत्रको अगर कोई काम दिला सकूँ तो उनका दुःख बहुत कुछ दूर हो सकता है। लेकिन विश्वेश्वरने इस बातको कभी स्वप्नमें भी नहीं समझा है कि कोई अच्छे घरका आदमी मुझसे रुपये पैसे माँगेगा या किसी तरहकी भलाईकी आशा रक्खेगा। यह बात ख्याल करते हुए भी उन्हें संकोच होता है। नौकरीका ठीकठाक

कर देनेके बाद उन्होंने भट्टाचार्यजीकी कोई खोज खबर नहीं ली। उनकी इच्छा थी कि किसी सूरतसे उनकी कुछ भलाई हो, सो हो चुकी। दो चार दस दिनका काम एक ही दिनमें निपट गया।

विश्वेश्वरको चले जाते देख सतीने फिर उनकी ओर दृष्टि फेरी। धीरसे बोली—"आपसे—आपसे—"

विश्वेश्वर अबके ठिठक गये; बोले, "मुझसे कुछ कहोगी?"

"हाँ।"

सती संकोचके मारे मरी जाती थी। नहीं कहनेसे भी काम चलता हुआ नहीं दिखता। सखीके आगे झूठी बनना पड़ेगा। एक तरहसे उसके साथ अन्याय भी करना होगा। विश्वेश्वर समझ गये कि बालिका कुछ संकोच कर रही है। इस लिए और भी निकट आकर मधुर कण्ठसे बोले, "कहो न? इतना शर्माती क्यों हो?"

सती बड़े कष्टसे बोली, "कमलाने कहला भेजा है कि—"

"कमला? कौन कमला?"

तनिक विस्मित और दुःखित हो सती बोली, "वही बाबू लोगोंके घरकी लड़की। उसे आप क्या नहीं जानते? आपने ही तो उसे एक बार डूबनेसे बचाया था।"

आश्चर्यमें आकर विश्वेश्वरने कहा, "ओह! वह तो बहुत दिनकी बात है। अच्छा तो उससे क्या?"

"कमला कहती है कि आपसे—सुना है, आपके ब्याहकी बात हो रही है?"

विश्वेश्वर जोरसे हँस पड़े। उन्होंने मन ही मन सोचा कि देखता हूँ कि मौसीकी बात बड़ी जल्दी गाँवभरमें फैल गई। हँसते हुए बोले, "हाँ, बात तो चल रही है लेकिन इससे तुम्हारा क्या मतलब है?"

जहाँतक बना सिर नीचा करके सती मधुर स्वरसे बोली, "कमला आपसे ब्याह करना चाहती है।"

सतीकी इस बातसे विश्वेश्वरको विस्मय तो कम हुआ, हँसी बहुत आई; किन्तु उसे शर्माती हुई देख उन्होंने सोचा कि इसके सामने इतना हँसना उचित नहीं। इसलिए बोले, "क्यों? क्या उसके और कहीं ब्याह होनेकी बात नहीं चल रही है?"

सती उनकी दिल्लगी न समझ सकी, इसलिए सीधेपनसे बोली, "हाँ, चाँदपुरके जमीन्दारके लड़केसे उसका ब्याह ठीक हो रहा है, पर वह वहाँ ब्याह करनेको राजी नहीं है।"

"सचमुच?"

"हाँ।"

विश्वेश्वर गम्भीर मुख करके बोले, "उससे कहो कि वहीं शादी कर ले। गाँवमें भारी बारात आवेगी। खानेपीनेका बड़ा मजा रहेगा। वे लोग बड़े भारी आदमी हैं। उन्हींके यहाँ शादी होना ठीक है।"

सतीने लज्जास्निग्ध नेत्रोंसे विश्वेश्वरके मुँहकी ओर देखते हुए कहा, "आप लोग भी तो बड़े आदमी हैं। भारी बारात लानेमें आपकी ओरसे कसर थोड़े होगी!"

"पगली हो क्या? चाँदपुरवालोंकी बराबरी मुझसे करती हो?"

"तो मैं कमलासे जाकर क्या कहूँ?"

विश्वेश्वरको फिर हँसी आ गई। बड़े कष्टसे मुख गम्भीर कर बोले, "कहना कि अगर मैं वर होऊँगा तो ब्याहके पूरी-पकवान मेरे हकमें नहीं लगेंगे; उपवास ही करते करते जान चली जायगी। बहुत दिनोंसे सोचे हुए हूँ कि इस ब्याहमें खूब कचरकूट होगी, ठूँस ठूँस कर खाऊँगा, इस लिए मैं दूल्हा नहीं बनना चाहता। समझीं?"

सती बहुत दुःखित हुई; पर उनकी बातें सुन उसे भी हँसी आगई। वह बोली, "आप तो दिल्लगी करते हैं!"

"दिल्लगी नहीं, सच्ची बात कहता हूँ। मुझे इस बातका बड़ा दुःख है कि उस बेचारीकी बात नहीं रख सका। तुम्हीं कहो न, उमदा उमदा चीजें खानेकी आशा क्यों कर छोड़ दूँ?"

सती उदास होकर जाने लगी। विश्वेश्वर बोले, "तुम्हारा नाम क्या है?"

"सती।"

"तुम्हारे भाई घर आये? तुम्हारे पिता उस दिन कह रहे थे कि—"

"हाँ" कहकर वह आगे बढ़ी। विश्वेश्वरने संकोचके साथ पूछा, "तुम्हारे बाबा तारापुरकी कोठीको रोज जाते हैं।"

चलते चलते सती बोली, "हाँ, जाया करते हैं?"

विश्वेश्वर और भी बहुत कुछ पूछना चाहते थे। उन लोगोंको किसी चीजकी कमी तो नहीं, कोई कष्ट तो नहीं हो रहा है, लेकिन यह सब पूछनेके पहले ही सती चल दी। स्वयं भी संकोचके मारे उन्हें यह सब पूछनेका साहस नहीं हुआ। रामशंकर उस दिनके बाद फिर उनसे नहीं मिले। कहीं वे दूसरा कुछ ख्याल न कर बैठें, इस लिए दो एक बार मिलनेकी इच्छा होनेपर भी वे उनके यहाँ नहीं गये। फिर कभी उन्होंने कोई बात नहीं कही, यह देखकर विश्वेश्वरने अपने मनमें समझ लिया कि अब उन लोगोंको किसी बातकी कमी न रही। उस दिन भूखों मरते हुए उस परिवारके लोगोंको सिरपर आई हुई विपदसे बचाकर वे उनके उद्धारका पथ निकाल सके, इस बातका स्मरण कर उन्हें एक प्रकारकी शान्ति मिली; उन्होंने उसी समय भगवानका ध्यान करके प्रणाम किया।

चौथा परिच्छेद।



रामशंकर भट्टाचार्य महीनेमें दस रुपये घर लाने लगे, इस लिए उन्होंने समझ लिया कि अब पुत्र कलत्र सबके ऋणसे उद्धार पा गये। अब किसी बातकी चिन्ता नहीं। अब वे प्रतिदिन स्वच्छन्द चित्तसे यथासमय स्नान, आहार करते हैं और दो तीन चिलम तम्बाकू पीकर सो जाते हैं। इसके बाद उठते हैं और अपने लिये रक्खे हुए जलसे हाथ मुंह धोकर कपड़े पहन चादर ओढ़ काम करने चले जाते हैं। रातके आठ नौ बजे घर लौटते हैं और फिर भोजन करके आराmसे सो जाते हैं।

रामशंकरके लड़के हरिशंकरने बहुत दिन हुए पाठशाला छोड़ दी है। प्रायः चाँदपुरके बाबुओंके ही संगमें अब उसके दिन बीता करते हैं। उन लोगोंने दिल बहलानेके लिए एक नाटक मण्डली बना रक्खी है। नारीचरितका अभिनय करनेमें वह अद्वितीय है और उसे सजता भी खूब है। इस लिए बाबू लोग भी उसे छोड़ना नहीं चाहते। महीनेमें दो एक दिनके लिए वह अगर घर आता है तो माँ, बहन, भाई सबको जलाता कुढ़ाता है और स्वयं भी कुढ़कर ही लौटता है। अपनी टूटी फूटी राम-मँड़ैयाकी वह सूखी रूखी दाल रोटी और साग भाजी उसे नहीं भाती। फटे पुराने कम्बलपर अब उसे नींद नहीं आती। रामशंकर भी उसकी इस रहनसे दुःखित नहीं हैं; कारण वे सोचते हैं कि बड़े आदमीका साथ है तो उसको कभी न कभी कोई अच्छा काम मिल ही जायगा। उसकी वह सँवारी हुई माँग, घड़ी, छड़ी, शर्ट, धोती और सिगारकी बहार देख वे बड़े निश्चिन्त मनसे

रहते हैं। केवल जाह्नवी देवी अकेलेमें बैठी बैठी रोया करती हैं। माँकी आँखें भीगीं देख दोनों कन्याएँ भी रोने लगती हैं। केवल इन्हीं तीन प्राणियोंको फिक्र रहती है। ये कभी चुप नहीं बैठतीं। सांसारिक कार्य्योंसे अवकाश पाकर जाह्नवी रूई कातती, पाटकी रस्सी बरती, या कुछ सीती पिरोती रहती है। दोनों कन्याएँ भी इस काममें अपनी माताकी सहायता करती हैं। सुईका काम जाह्नवीको खूब आता है। लेकिन इसमें कुछ पैसा लगाना पड़ता है, इस लिए जिसमें कम खर्चा हो या बिल्कुल खर्चा न हो ऐसा ही काम वे किया करती हैं। इससे जो कुछ पैदा होता है उससे बहुत कुछ काम निकल जाता है। "स्वामी दस रुपये पाते हैं। इतनेमें पूरा नहीं पड़ता, भविष्यत्‌में घड़ी-कुघड़ीके लिए कुछ रखना भी जरूरी है। स्वामीका दमेके मारे दम परेशान रहता है। कन्याएँ दोनों सयानी हो चलीं। रूप ही रहनेसे काम नहीं चलता। रूप और गुण छुपानेके लिए ऊपरसे रुपयेकी भी जरूरत होती है। लेकिन घरमें तो यहाँ मूसे डंड पेलते हैं। किसी सूरतसे पेटका खर्चा चला जाता है। लड़कियोंका निर्वाह कैसे होगा? इनके विवाहकी फिक्र भी तो नही हो रही है?" यही सब सोच सोचकर जाह्नवी लम्बी साँस ले भगवानको गुहराया करती हैं।

* * *

ठीक दोपहरका समय हैं। चारों ओर सन्नाटा है। बर्त्तन माँजने और झाड़ने बुहारनेका काम खतम हो चुका है। बिल्ली आरामसे तुलसी चौतरेके पास सोई हुई है। कुत्ता दरवाजेके नीचे पड़ा हुआ है। आँगनमें टट्टीके ऊपर कद्दूकी बेल फैली हुई है। उसके पत्ते धूपमें चमक रहे हैं। साफ सुथरे, लिपे पुते आँगनमें उगे हुए केलेके छोटे छोटे पौधे धूपकी कुछ भी परवा न कर अपनी सतेज श्यामकान्ति

दिखलाकर दर्शकोंकी आँखें तृप्त कर रहे हैं। पेड़के पत्तोंमें छिपकर बैठी हुई कोयल आमके मीठे मीठे फल खाकर प्रसन्न हो बीचबीचमें पुकार उठती है, "कुहूकू-कुहूकू।" जाह्नवी बहुत सा सन लेकर आई और उसे पानीमें भिगोकर नरम करने लगीं। सावित्री उसे यत्नपूर्वक रखने लगी। सती माताके मुखकी ओर देख बोली, "मा! कमला ससुरालसे आगई है, मैं जाकर उससे मिल आऊँ?"

"जाओ! लेकिन बड़ी धूप है बेटी! थोड़ी देर बाद जाइयो।"

"देर होनेसे रास्तेमें लोगोंका आना जाना बहुत होने लगेगा, इसलिए इसी समय जाना ठीक है। सावित्री! तू भी चल।"

सावित्रीने सिर हिलाकर अपनी असम्मति जना दी।

"तब मैं अकेली कैसे जाऊँ?"

माने कहा, "सावित्री, तू भी जा बेटी! वह अकेली कैसे जायगी?"

अपना धूपसे मुरझाया हुआ मनोहर मुखड़ा फेरकर ललाटसे अपने रूखे बालोंको हटाते हुए सावित्रीने विनयके साथ कहा "बहन! तुम कालीको साथ ले जाओ। मैं माके पास बैठकर रस्सी बटती हूँ। देखती हूँ मुझसे यह काम हो सकता है या नहीं। मैं आज कहीं न जाऊँगी।"

अपने छोटे भाई कालीशंकरको अनेक लालचोंसे फुसलाकर और उसे गमछा ओढ़ाकर गोदीमें ले सती घरसे बाहर हुई। माताने पुकार कर कहा "धूप बड़ी तेज है बेटी! तू भी एक गमछा सिर पर डाल ले।" सती माकी बातपर ध्यान न देकर चल दी।

बड़े आदमीका मकान ठहरा; प्रवेश करते हुए पैर काँप रहे हैं। आज दो बरस हुए कमला जबसे ससुराल चली गई तबसे सती इस घरमें नहीं आई। उस समयकी अपेक्षा अब उम्र भी अधिक हो गई है। शील संकोच भी अधिक हो गया है। अमीरके घरकी बहू बेटियाँ

साधारण आदमियोंसे भरमुँह बोलती भी नहीं। आँख मिलाते भी उन्हें शर्म माल्म होती है। यह भी सतीको ख्याल होने लगा। उसने मन ही मन सोचा, अब आजके बाद फिर कभी यहाँ न आऊँगी।

किन्तु कमला जब दौड़ी हुई आकर उसके गले लग गई तब उसके मनके उक्त सभी भाव दूर हो गये। इन दो वर्षोंमें कमलाकी देह खूब भर आई है। उसकी सुन्दरता भी बहुत बढ़ गई है। भूषण, वसन और सौभाग्यकी दीप्तिसे उसका सारा शरीर दमक रहा हैं। सती कुछ नहीं बोली, चुपचाप मुग्ध नयनोंसे उसकी ओर निहारती रही। कमला भी पहले पहले कोई बात नहीं कह सकी। उसे माल्म हुआ मानों यह सती वह नहीं है। दरिद्रताके मध्य पालित होनेपर भी माल्म होता है मानों यह गर्वित सुन्दर मुख किसीने बिलकुल नई तरहसे गढ़ कर तैयार किया है। वह लम्बी तो हो गई है, पर साथ ही दुबली है। सूखे रुखे केशोंकी राशि उसके क्षीण सुकुमार सौन्दर्य्यकी छायाके समान ही उसके शरीरको घेरे हुए है। उसके अधरोंमें शान्तिपूर्ण हँसी है, पर उज्ज्वल और विशाल नयनोंमें मलिनता और विषाद भरा हुआ है। उसके गलेमें बाँह डाल कर कमला बोली " अरी! तू ऐसी पत्थर हो गई है कि आकर भेट भी नहीं कर जाती? मैं अगर जाने पाती तो अब तक कभीकी तेरे यहाँ पहुँची होती। आठ दिनके लिए आई हूँ। तीन रोज आये हो गये और तुझसे भेट भी नदारद।" सती उसकी बात सुनकर हँसने लगी।

कमला फिर बोली, " तू इतनी मरीज सी क्यों हो रही है?"

" मरीज कहाँ हूँ? यह भी तो ख्याल करो कि आज कितने दिनोंके बाद भेट हुई है।"

" दो वर्ष हुए होंगे और क्या? ऐसी जगह जा पड़ी हूँ कि कहीं आने-जानेसे भी लाचार हूँ। न जाने कितनी कहा-सुनीपर तो अबके

आई हूँ।" यह कहकर कमला हँसी। उसे हँसते देख सतीको भी हँसी आ गई, बोली, "किससे कह सुनके आई हो? घरके लोगोंसे?"

"कहना सुनना कैसा? सास सुसर क्या अपने लड़केकी इच्छाके विरुद्ध कुछ कर सकते हैं? मेरी जेठानी तो बीचबीचमें नैहर जाती थीं; लेकिन मेर भाग्य नही जगते थे। मैं जब उनसे यहाँ आनेके लिए कहती, तो वे दिल्लगी करके बात टाल देतीं। कहतीं—'अभी नयी नवेली हो, इसीसे इतनी चाह है। हम लोगोंका भी पहले यही हाल था।' वे सब ऐसे वज्र हैं कि नैहर आने देनेका नाम भी नहीं लेते।"

इसी तरह दोनों सखियोंमें हास्य-विनोदकी बातें होने लगीं। कमलाके सुख-सौभाग्यकी बात सुनकर सती सचमुख बड़ी सुखी हुई। उसके मनमें दो वर्ष पहलेकी बातें कभी कभी उदय हो आती थीं। न मालूम कमला कैसे रहती होगी, यही सोच सुनकर उसका चित्त व्याकुल हो जाया करता था। विवाहके समय कमलाका वह मलिन मुख और विरक्तिपूर्ण भाव देख सती एकदम दुःखसे अधीर हो गई थी और इस कारण विश्वेश्वरसे भी वह अप्रसन्न रहती थी।

इतने दिनों बाद उसकी सारी चिन्ता दूर हो गई। लेकिन साथ ही साथ एक बड़ाभारी कौतूहल उसके मनमें उठने लगा। उसे न मालूम कौनसी बात पूछनेकी इच्छा होती थी; पर अनुचित समझकर वह अपनी इच्छाको रोक लेती थी। इधर उधरकी अनेक बातें हो चुकनेपर कमला बोली, "तुम भी तो कुछ अपनी बात कहो।"

"मेरी कौनसी बात है, जो मैं तुमसे कहूँ?"

"ब्याहकी बात कहो। अब और कितने दिनों तक तपस्या करोगी?"

सती हँस पड़ी। कमला बोली "हँसनेसे काम नहीं चलेगा। बोलो, कहीं विवाहकी बातचीत चलती है कि नहीं?"

" मैं क्या जानूँ ? "

" ओह ! बड़ी नादान बिटिया हो ? इतनी बड़ी उम्र हुई, कुछ जानती ही नहीं । अब तो तुम स्यानी हुई, ब्याह होना चाहिए । "

" ब्याह यों ही थोड़े होता है । बाप माँ वर खोजेंगे, घर द्वार गिरो रखकर रुपया काढ़ेंगे, तब न ब्याह होगा ! "

" अरी तू क्या कहती है ? तू इतनी सुन्दर है कि लोग तुझे आदर करके घर ले जायँगे । "

" तू ही घर ले जायगी । अगर अपना ले तो अभीसे तेरे ही घर रह जाऊँ । " यह कहकर सती हँसने लगी; किन्तु कमलाकी आँखें भर आईं । वह उदासी भरे स्वरमें बोली " तो इसका उपाय क्या किया जायगा ? "

" उपाय किस बातका ? मैं यों ही रहूँगी और मा-बापका लहू पानी किया करूँगी । तुम यह मत समझियो कि मैं क्वाँरी रहनेसे दुःखी हूँ; दुःख मुझे इसी बातका है कि इस गरीबीके जमानेमें बाबाको मेरे विवाहकी भी एक चिन्ता आ लगी है । " यह कह कर सती जाने लगी ।

कमलाने कहा " क्यों ? क्यों ? चली क्यों ? "

" अब नहीं बैठूँगी । रास्तेमें बहुत लोग आने जाने लगेंगे । अभी ही जाना अच्छा है । "

" कल फिर आओगी ? "

" कल तो नहीं, पर तुम्हारे रहते रहते एक दिन और आऊँगी । "

" सती ! तुम ऐसी हो गई हो ? मैं तुमसे मिलनेके लिए कितना छटपटाती हूँ और तुम कहती हो कि किसी दिन चली आऊँगी । अच्छा, जैसी तुम्हारी मर्जी । "

हँसते हुए, भाईको गोदमें ले, सती चली गई। घर आकर देखती है तो प्रलयकाण्ड उपस्थित है। लज्जा और घृणाके साथ कण्ठको सप्तम स्वरमें चढ़ाकर उसकी चाची कह रही है, "चौदह बरसकी सयानी लड़कीको बड़े आदमीके घर भेज देनेमें तनिक लज्जा नहीं आई? अच्छा, आज देवरजी आवें तो मैं इसका उपाय करूँ। बिना इसका प्रतिकार किये मैं अन्नजल ग्रहण न करूँगी।"

रातके आठ बजे रामशंकर घर लौटे। सावित्रीने उन्हें पैर धोनेके लिए जल दिया और हाथ-मुँह पोछनेके लिए गमछी। इसके बाद वह एक पंखा लेकर हवा करने लगी। जाह्नवीने स्वामीके आगे भोजनकी थाली रख दी। वे खाने बैठे। कालीशंकर चिल्ला रहा था, उसे ठोककर थपथपाकर सती सुला रही थी; पर वह सोता ही न था। जब किसी तरह वह नहीं सोया, तब उसे रोता ही बिछौनेपर छोड़ वह पिताके पास आ बैठी। काली और भी जोरजोरसे चिल्लाने लगा। सतीने सावित्रीसे कहा "तू जा, मैं बाबाको पंखा करती हूँ।" भाईको गोदमें ले सावित्री उसे चाँदको दिखलाते हुए हाथ हिलाहिलाकर लोरी गाने लगी। बालक भी अपनी बहनकी नकल करके देह डुलाने लगा। द्वारके पास खड़ी होकर जाह्नवी अपने स्वामीका भोजन करना देख रही थी। सहसा दीपकके उजालेमें उसने सतीको देखा। निखरी हुई चाँदनीमें दरिद्रके आँगनमें खिली हुई उस कुसुमकलीपर दृष्टि पड़ते ही उसने एक लम्बी साँस ली। यह देख सती भी अपनी माँके मुँहकी ओर निहारने लगी।

इतनी देरतक जेठानीजी खर्राटे लगा रही थीं। एकाएक उनकी नींद टूट गई। जल्दी जल्दी डग बढ़ाती हुई रसोईघरके दरवाजेपर पहुँच कर एक पीढ़ा ले भट्टाचार्यजीकी थालीके पास ही आकर बैठ

गईं । रामशंकरने ऊपर सिर कर एक बार उनकी ओर देखा और दूसरे क्षण थालीपर दृष्टि कर भोजन करनेमें मन लगाया । इस समय जेठानीजीका धैर्य छूट गया । वे घनघनाती हुई बोलीं, " खाली भकोसनेका ही हाल जानते हो कि और कुछ ? इधर दो दो लड़कियाँ सयानी हुईं, एक चौदहकी, दूसरी बाहर बरसकी, इसकी कुछ खबर ही नहीं है । आँखें क्या फूट गई हैं ? होश हवास ठिकाने हैं कि नहीं ?"

रामशंकर अनखाकर बोले, " इसके लिए क्या करूँ ? बिना रुपएके लड़कीका व्याह कैसे होगा ? "

" तब बाप काहेको बने ? लड़की दोनोंकी दोनों बे-कही हो रही हैं । इधर उधर मारी मारी फिरती हैं, कोई देखने सुननेवाला नहीं है । बापरे बाप ! तुम दोनों, माँ बाप नहीं, कसाई हो । तुम लोगोंको इसकी चिन्ता नहीं । कैसे भर पेट खाया जाता है ? "

धीमे स्वरसे जाह्नवीने कहा, " जीजी ! ये सब बातें इस घड़ी रहने दो । यह झंझट तो कपारपर हई । "

अब तो जेठानीजी जलते तेलकी बैंगन हो गईं । उनका उच्चस्वर आसमान फाड़ने लगा । कहने लगीं, " इसीसे तो कभी कुछ कहनेकी इच्छा नहीं होती । जाय, मरे, मुझे क्या गरज पड़ी है जो जान दूँ ? माँ बाप ही जब निश्चिन्त बैठे हैं, तब मैं कौन हूँ ? तीनमें कि तेरहमें ? मेरे हाय हाय करनेसे क्या होता है ? मैं थोड़े ही बदनाम होऊँगी ? कालिख क्या मेरे मुँहमें लगेगी ? मेर शत्रु थोड़े मेरे नामपर हँसेंगे ? मैं भी अजब झक्की हूँ । मेरा इन सब बातोंसे क्या वास्ता है ? "

रामशंकरको खाना मोहाल हो गया । थालीपरसे उठने लगे । सती उनका पैर पकड़कर बोली, " बाबा, उठो मत, खा लो । "

क्रोधसे पैर झटककर रामशंकर बोले, " मरो, तुम सब मरो, या मैं मरूँ, तभी कल्याण है!" यह कहते रामशंकरका दम फूलने लगा। वे खाँसते खाँसते बेदम हो बेहोश हो गये। जाह्नवी घबराई हुई आई और स्वामीकी पीठ और छाती दबाने लगी। सावित्री भी दौड़ी हुई आकर पंखा करने लगी। सतीको तो मानों काठ मार गया। वह वैसी ही ज्योंकी त्यों चुपचाप बैठी रह गई।

जब कुछ स्वस्थ हुए तब बड़ी आरजू मिन्नत करने पर रामशंकरने भोजन किया। जाह्नवी स्वामीको पान देने लगी। सती जाकर घरमें सो रही। स्वामीको हर सूरतसे स्वस्थकर जाह्नवी जब निश्चिन्त हुई, तब उसने देखा, इधर चौंतरेके पास बैठी सावित्री पंखेसे बिल्लीको खदेड़ रही है। जाह्नवीने पूछा " सती कहाँ है ?"

" सोने गई है। तू खानेको दे, मैं जाकर बुला लाती हूँ।"

सावित्रीने जाकर पुकारा, "बहन! खाने चल।" किन्तु सतीने उत्तर भी न दिया।

" जीजी! खाने चल; माँ बैठी है।" लेकिन जीजी टससे मस न हुई।

" उठ, जीजी! तेरे पाँव पड़ती हूँ, चल। क्या बाबाकी बात पर गुस्सा मान गई है? क्या उनकी तकलीफको तू समझती नहीं? उठ, चल, दो कौर खा ले।"

मुँहपरसे कपड़ा हटाकर रोते हुए विकृत कण्ठसे सती बोली, "तू जा; मा और तू दोनों जाकर खा लो। मुझे आज भूख नहीं है। नहीं खाऊँगी।"

" मैं तेरे पाँवपर सिर पटककर मर जाऊँगी, नहीं तो चल।"

"सावित्री! मेरी लक्ष्मी! बहन मेरी! जाकर खा ले। मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।"

"मैं सो सब नहीं सुननेकी। दो ही चार कौर खाकर चली आइयो।"

जाह्नवीने आकर सतीका हाथ धरकर उठाया और स्थिर कण्ठसे कहा "अगर तुम सब ऐसा ही करोगी तो मैं कैसे जीऊँगी ? चल खा ले।" निदान सबने जाकर साथ भोजन किया।

प्रातःकाल रामशंकर तंबाकू पीकर बहुत कुछ सोच विचार कर बोले "देखो आजहीसे मैं लड़केकी खोजमें रहूँगा, पर सम्पत्तिके नाम केवल यही घर है। कैसा ही पात्र हो, कमसे कम चार पाँच सौ रुपयेकी तो फिक्र करनी ही होगी। घर बेचने या बन्धक रखनेके सिवा दूसरी गति नहीं है। अगर बाबू लोगोंको मकान रेहन कर देनेपर रुपये मिल जायँ, तो अच्छी बात हो। खैर जो हो, अब तो कुछ न कुछ फिक्र करनी ही पड़ेगी।"

जाह्नवी बोली, "पहले पात्र तो खोजो, पीछे रुपयेकी चिन्ता करियो।"

रामशंकरने कहा, "तुम ऐसा कहती हो और मेरा कहना है कि पात्रसे पहले रुपयेकी दरकार है। जैसा रुपया जुटा सकूँगा वैसा ही पात्र भी मिलेगा। बेटीके लिए अबकी बार घर दुआर भी जायगा।"

जाह्नवीने घरके भीतर जाकर देखा, सती सोई है। ये सब बातें वह नहीं सुन सकी। उसने एक शान्तिभरी साँस ले ली।

पाँचवाँ परिच्छेद।

—:o:—

विश्वेश्वरकी मौसी अन्नपूर्णादेवीने सावित्री व्रतका उद्यापन किया है। इसलिए उनके घर बड़ी घूमधाम है। बड़े बड़े चूल्हे तैयार कराये गये हैं, जिनपर खानेपीनेकी अनेक चीजें पक रही हैं। हलवाई भरभर थाल मिठाई ला-लाकर तौल रहे हैं। भरभर हँड़ी दही दूध ला-लाकर ग्वालोंने एकदम दालान भर दिया है। पड़ोसी बड़ी बड़ी काठकी कठौतियोंमें जोरजोरसे मैदा गूँध रहे हैं। ब्राह्मणकुलतिलक रसोइये हाथमें

सुदर्शन चक्रकासा झरना लिये रावणके भोजनके समयकी सी कढ़ाईमें पूरियाँ तल रहे हैं। मधुर गन्धसे दिशायें पुलकित हो रही हैं। पत्तल और मिट्टीके सकोरोंसे तमाम आँगन भरा हुआ है। जो घर हरदम सुनसान रहता था आज वह सारे गाँवको माथेपर उठाये हुए है। मौसी जो कुछ माँगती है विश्वेश्वर उसे फुर्तीके साथ ला-लाकर जुटाते हैं। अन्नपूर्णा देवी व्रतसमापनके अन्तमें ललाटमें यज्ञका चिह्न तिलक धारण किये हुए और रेशमी वस्त्र पहिने हुए मूर्तिमती शान्तिकी तरह कहाँ किस चीजकी जरूरत है, इसीकी देखरेख कर रही हैं।

आखिर ब्राह्मणभोजन समाप्त हुआ। अन्नपूर्णाके हाथसे ताम्बूल, यज्ञोपवीत और दक्षिणा लेकर उन्होंने आशीर्वाद दिया। अन्नपूर्णाने स्नेह-सजल नेत्रोंसे विश्वेश्वरको उन लोगोंके चरणोंमें नवाकर कहा, "आप सब लोग मिलकर इसे ही असीसें जिससे मेरा यह आँखोंका तारा जीये जागे!"

फिर बड़े आदरके साथ सुहागिनोंको खिलाया पिलाया गया। अपनी दोनों लड़कियों, सती और सावित्रीके साथ, जाह्नवी भी निमंत्रणमें आई थी। अन्नपूर्णा मुग्धदृष्टिसे बार बार सतीकी ओर देख रही थी। पान इलायची लेकर जब सब सुहागिनें घर जाने लगीं तब अन्नपूर्णाने मधुर हँसी हँसकर जाह्नवीसे कहा, "बहू जरा बैठो, पीछे जाइयो। मुझे कुछ बातें करनी हैं।"

जब गड़बड़ मिट गई, तब अन्नपूर्णा एक पीढ़ा लेकर जाह्नवीके निकट आकर बैठीं और बोलीं "क्यों बहू! तुम्हारी बड़ी बिटिया कितने बरसकी हुई?"

मलिन मुँह किये जाह्नवीने कहा, "यही कोई तेरह चौदह सालकी हुई होगी।"

" कहीं शादीकी बात है कि नहीं?"

" सम्बन्धके लिए दौड़ धूप तो बहुत हो रही है, पर अभी तक कहीं बातचीत पक्की नहीं हुई है।"

" ऐसी सुन्दर लड़कीको तो लोग लड़-झगड़कर घर ले जायँगे। फिर इतनी देरी क्यों हो रही है?" जाह्नवी चुप रह गई। अन्नपूर्णा कहती गई, " विशूके लिए भी कहीं ऐसी ही दुलहिया मिल जाती तो कैसा अच्छा होता!" सती सिर नीचा किये बैठी थी, उसकी देहसे पसीना छूटने लगा!

क्षीण स्वरसे जाह्नवीने कहा, " बहन! विशूके लिए दुलहियाका कौनसा टोटा है? इससे भी हज़ार गुनी बढ़चढ़कर मिलेंगीं!"

" नहीं, तुम्हारी दोनों लड़कियोंका लोग बड़ा बखान करते हैं। सयानी होनेपर एक बार भी मैंने इन्हें नहीं देखा। खैर, जाने दो, इन सब बातोंमें क्या धरा है? मैं तुम्हें जबान देती हूँ। बड़ी लड़की तुम मुझे दो।"

जाह्नवीकी तो एकाएक बोलती ही बन्द हो गई। वह बड़े कष्टसे क्षीण कण्ठसे बोली, " बहन! क्या मेरी कन्याका ऐसा भाग्य है कि—"

" सो सब बातें रहने दो। ऐसी लड़कीका भाग्य न होगा तो और किसका होगा? यह लड़की साक्षात् राजलक्ष्मी है। बेटी, तेरे बड़ा पसीना आ रहा है। इधर आ, हवा कर दूँ।"

अन्नपूर्णा आँचलसे सतीको हवा करने लगी, पर उसे और भी पसीना छूटने लगा। सावित्री खिसक कर सतीके और पास चली आई और मुसकराते हुए अपनी बहनकी ओर देखने लगी। जाह्नवीने कहा " बहन! बड़ी रात हुई, अब मैं जाती हूँ।"

" मेरी बातका क्या जवाब देती हो?"

"बहन! अगर मेरी सती तुम्हारे चरणोंकी दासी हो, तो इससे बढ़कर उसके सौभाग्यकी बात और क्या हो सकती है। वह तुम्हारी हो, इसमें लोगोंको कहना सुनना ही क्या है? पर विश्वेश्वरकी सम्मति भी तो चाहिए।"

"अगर सती उसके मन न भाये तो मैं जान लूँगी कि उसके भाग्यमें ब्याह बदा ही नहीं है। लेकिन देखो बहू, इस बातका ख्याल रखना कि यह बात अभी फैलने न पावे। लड़का बड़ा हठी है। दूसरेके मुँहसे सुननेपर कहीं कुछ गड़बड़ न कर बैठे। मैं उसे धीरे धीर साध लूँगी। लेकिन तुम संदेह मत करियो। दुनियामें ऐसा कोई लड़का नहीं जिसे तुम्हारी लड़की पसन्द न हो। मैं तुम्हें बात दे चुकी, अब दो एक महीने तक सब्र करो।"

घर आकर जाह्नवीने ये सब बातें अपने स्वामीसे कहीं। रामशंकर सोये हुए थे, एकाएक उठ बैठे। मारे खुशीके सब कुछ भूल गये। "तब फिर चिन्ता काहेकी? विश्वेश्वर बड़ा अछा लड़का है। वह कभी रुपया नहीं माँगेगा, अब घर दुआर बचा। खर्चके लिए थोड़ासा ऋण लेनेसे ही काम चल जायगा। फिर धीरे धीरे पटा देंगे; क्यों?" जाह्नवीने कहा —"अभीसे इतने बावले मत होओ। होनहार अच्छा होगा तभी न शादी होगी! अभी कोई बात कैसे कही जा सकती है।"

"नहीं नहीं, वे लोग बातके धनी हैं। विश्वेश्वर बड़ा ही सज्जन है। इसके सिवा मेरी लड़की भी तो रूप गुणमें कुछ कम नहीं है। तुम्ही कहो न, गाँवभरमें और भी किसीकी लड़की ऐसी है?"

कन्याके रूपगुणके गर्वसे वे सहसा अत्यंत गर्वित हो उठे। जाह्नवी चुप हो रही। न जाने क्यों यह अतर्कित, असम्भावित, उच्च आशा उसके मनमें नहीं बैठती थी।

दो चार दिन बाद अन्नपूर्णाने एक दिन सती और सावित्रीको न्यौता देकर बुलवाया। सती लजाती थी पर विना गये काम नहीं चलता था, इस लिए गई। अन्नपूर्णा बड़े प्रेमके साथ दोनोंको अपने पास बैठाकर बातचीत करने लगी।

स्नान कर, सूखा वस्त्र पहिन, जनेऊ माँजते हुए विश्वेश्वर भोजन करनेके लिए अपनी मौसीके निकट आये। दोनों लड़कियोंको देख पहले तो वे ठिठके, फिर न जाने क्या सोचकर सीधे मौसीके पास आकर खड़े हो गये। बोले, "ये किसकी लड़कियाँ हैं मौसी?"

"पहचान तो सही किसकी हैं?

"विश्वेश्वर एकटक देखने लगे। सतीने लाजसे सिर नीचा कर लिया। सावित्री भी कुछ कुछ सकुचा रही थी, क्योंकि वह अन्नपूर्णाका मतलब समझ गई थी। विश्वेश्वरने कहा, "मौसी! यह तो सती माळूम होती है और वह कौन है?"

"उसीकी बहन सावित्री। बेटा कैसी भली लड़कियाँ हैं?"

"हाँ मौसी! आज भी कोई व्रत है क्या, जो इन्हें निमन्त्रण देकर बुलवाया है?"

"क्या व्रत त्योहारके सिवा और कभी अपने परिचित स्नेहीजनोंको न बुलाना चाहिए? अच्छा तू बैठकर इनसे बातें कर, मैं चलकर भात परोसती हूँ।"

अन्नपूर्णा चली गई। विश्वेश्वर एक झरोखेपर जा बैठे। बोले—"सती! तुम्हारे छोटे भाईका क्या नाम है, उसे क्यों नहीं ले आईं?"

सती लज्जासे मरी जा रही थी। उसके गाल गुलाबकी तरह लाल हो रहे थे; कानके पास झायँ झायँ शब्द हो रहा था और सिरसे टपाटप पसीना चू रहा था।

अपनी बहनकी यह विपद देख सावित्रीने मृदु स्वरसे कहा " उसका नाम कालीशंकर है । वह सोया हुआ है । "

" तुम्हारा ही नाम सावित्री है ?"

" हाँ । "

" तुम्हें मैंने बहुत छोटेपनमें देखा था, इससे पहचान न सका । सतीको बहुत बार देखा है । अच्छा, सती ! तुम पढ़ी हो कि नहीं ? कौन-कौनसी पुस्तकें तुमने पढ़ी हैं ? रामायण, महाभारत पढ़ा है कि नहीं ?"

सती जवाब न दे सकी । उसका इतना सकुचाना विश्वेश्वरको अच्छा न लगा । वे मन-ही-मन कुछ खीझ गये । सावित्री उसकी तरफ़से जवाब देने लगी । " जीजीने रामायण और महाभारत दोनों ग्रन्थ पढ़े हैं । "

" तुमने भी पढ़े हैं न ? "

अबके सावित्रीने सिर नीचा कर लिया ।

भोजनादिके अनन्तर जब वे दोनों अपने घर चली गईं तब मौसीने विश्वेश्वरसे पूछा, "दोनों लड़कियोंमें कौन अधिक सुंदर है, कह तो सही ।"

" अधिक सुन्दर ? " आश्चर्यके साथ विश्वेश्वरने कहा, " दोनों ही भली हैं । यह तो मैंने नहीं देखा कि कौन कम है कौन अधिक । लेकिन मौसी ! यह तुम पूछ काहेको रही हो ? "

" यही जाँचनेके लिए कि तुझे अभी तक कुछ समझ-बूझ आई है कि नहीं । वाह ! सती कैसी अच्छी लड़की है । उसके ऊपरसे तो आँखें हटानेको जी नहीं चाहता । "

" सचमुच ! हो सकता है । दोनोंकी दोनों लड़कियाँ बड़ी सुशील हैं । हाँ, मौसी ! अब तो इनके घरमें किसी बातकी तकलीफ नहीं है ?"

" तकलीफ और तो कुछ नहीं मालूम होती; पर हाँ, लड़की सयानी हो गई है, इसी लिए वे लोग बड़ी चिन्तामें पड़ रहे हैं । "

"क्यों? कैसी चिन्ता?"

"लड़कीका ब्याह नहीं होता, यह क्या थोड़ी चिन्ताकी बात है? ऐसी सुन्दर लड़कियाँ हैं, तो भी अच्छा घर वर नहीं मिलता। मिले भी कहाँसे? रुपया पास हो तब न?"

विश्वेश्वरने बड़ी प्रसन्नतासे कहा, "तब मौसी! उन्हें थोड़ासा रुपया उधार क्यों नहीं दे देती हो? बेचारे बड़ी तकलीफमें हैं?"

क्रोधित होकर मौसीने कहा "मानों मेरे तो रुपया धरनेको अब जगह ही नहीं है। वाह खूब उपदेश देनेको आया है! और रुपया होनेसे ही क्या अच्छा पात्र मिल जायगा?" कैसी सुन्दर सुशील लड़की है! उसके योग्य वर क्या आसानीसे मिल जायगा?"

"सो सच है मौसी। खैर, मैं ढूँढ़ दूँगा। लेकिन देखो, अगर मैं पात्र ढूँढ़कर ला दूँ तो तुम उन्हें रुपया तो दोगी न?"

अब तो मौसीसे नहीं सहा गया। बोली, "जा तेरे साथ माथापच्ची कौन करे! कहीं ऐसे भी लड़के होते हैं!" लड़का मौसीके खिसियानेका मतलब ही नहीं समझ सका और हँसते हुए अपने पुस्तकालयमें चला गया।

एक महीना बीत गया। विश्वेश्वर एक दिन किसी कामसे रामशंकर-जीके घरकी ओरसे आ रहे थे। उन्होंने देखा कि नंगा उघाड़ा काली एक बछड़ेको पकड़ कर खेल रहा है। खेलमें इतना मग्न है कि उसने यह भी न देखा कि गाय उसे मारनेके लिए दौड़ी आ रही है। विश्वेश्वरने दौड़कर कालीको गोदमें उठा लिया। गाय अपने बछड़ेको छूटा हुआ देख लड़केको छोड़ अपने बछड़ेकी ओर लपकी। विश्वेश्वरने प्यारके साथ बालकसे पूछा "तुम्हारा क्या नाम है, बाबू!"

"बाबू नहीं, मैं कालीपद हूँ।"

"अच्छा काली, गैया अभी तुम्हें मारती तो तुम क्या करते?"

" ओह ! मैं उसे लाठीसे मारता । "

तब भी बालक काँप रहा था । विश्वेश्वर उसे बार बार धीरज दिलाने लगे । इसी समय किसीने द्वारके निकटसे ही पुकारा— " काली ! " विश्वेश्वरने फिरकर देखा, सती है ।

सती भी ठिठककर खड़ी हो गई । विश्वेश्वरने नजदीक आकर कहा, " अभी बच्चेको गाय मारे विना न छोड़ती । लड़के बच्चोंको जरा सावधानीसे रखना चाहिए । "

सती कुछ न बोली । विश्वेश्वर जब बच्चेको उसकी गोदमें देने गये तब वह तनिक पीछे हट गई । कहीं कोई देख न ले, यही भय उसे लगा । लाचार उन्होंने कालीको गोदसे नीचे उतार दिया और कहा " इसे गोदमें ही ले लो, बच्चा अबतक डरसे काँप रहा है । "

सतीने भाईको गोदमें ले लिया । भाई ही डरसे काँपता हो सो नहीं, वह स्वयं भी लज्जासे काँप रही थी ।

विश्वेश्वरने कहा, " तुम दोनों फिर मौसीके यहाँ नहीं गईं ? "

कोई जबाव दिये बिना ही सती घरके भीतर चली गई । विश्वेश्वरको बड़ा बुरा मालूम हुआ । ऐसे मौकोंपर दो एक बात कहना उचित है, नहीं तो बिल्कुल अकृतज्ञता प्रकट होती है । लज्जाकी मात्रा इतनी अधिक होना भी ठीक नहीं ।

दो महीने इसी तरह कट गये । तब मौसीने सोचा कि लड़का बड़ा मूर्ख है, उससे स्पष्ट ही कहना ठीक है । अन्यथा न तो वह इस जन्ममें कभी मेरा मतलब समझेगा और न कभी समझना चाहेगा । एक दिन पुत्रको बुलाकर उन्होंने बिना किसी प्रकारके आडम्बरके कहा, " मैंने तेरे ब्याहका सब ठीकठाक कर लिया है । अगले महीनेमें सतीके साथ तेरा ब्याह होगा । "

विश्वेश्वर बड़े अचंभित हुए । विस्मयको कुछ दबाकर बोले, " यह क्या मौसी ! सती तो हम लोगोंकी रिश्तेमें कुछ लगती थी न ? "

इससे क्या ? स्वजाति तो है । दूरका नाता है । इसलिए ब्याहमें अड़चन नहीं । "

" अड़चन क्यों नहीं ? उसका भाई हरि तो मुझे भैया कहकर पुकारता है । वे सब भी अभी हाल तक मुझे विशू भैया कह कहकर पुकारा करती थीं । राम राम मौसी ! तुम यह क्या कहती हो ? "

" तब क्या तू ब्याह नहीं करेगा ? अगर पीछे कभी करेगा तो उस समय ऐसी लड़की कहाँ मिलेगी ? "

" मौसी ? एक छोड़ अनेक मिलेंगीं, और यदि ऐसी न भी मिलीं तो न सही; तुम्हें तो लड़की ही चाहिए ! बस इतना देख लेना होगा कि वह कुरूप न हो । सो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि इसकी पूरी पूरी खबरदारी रक्खूँगा । तुम इस समय मुझसे ब्याह शादीकी चर्चा मत चलाओ ।"

" इस समय नहीं तो तू कब ब्याह करेगा ? चौबीसवाँ साल बीत रहा है, अब भी लड़कई करना न छोड़ेगा ? अच्छा, देख, मैं यही आखिरी बार कहती हूँ कि मैं बात दे चुकी हूँ । मुझे उन लोगोंके आगे अपमानित मत करना । दो महीनेसे वे लोग मेरी आशामें हैं । अगर तू मेरी बात न मानेगा तो मैं घर छोड़ चली जाऊँगी । "

विश्वेश्वर लाचार हो गये । दुःखी हो बोले, " मौसी ! जैसे इतने दिन माफ किया वैसे बरस छः महीने और माफ करो । मैं तुम्हारे पैर पड़ता हूँ । मुझे अपना मन अच्छी तरहसे मजबूत बना लेने दो । "

" मन क्या मजबूत करेगा ? दुनियामें क्या कोई शादी नहीं करता ? "

" करता क्यों नहीं ? लेकिन मैंने तो अब तक शादी नहीं की, इसीसे डर लगता है। मैंने अबतक मनको स्वाधीन रक्खा और आगे भी रखना चाहता हूँ। लेकिन यदि तुम ऐसा करोगी तो मुझे उस आशाको छोड़ना पड़ेगा। तो भी मौसी! मुझे थोड़ा अवकाश दो, मुझे इस तरह बाँधके मत मारो।"

हताश होकर मौसीने कहा, " विश्वेश्वर! वे लोग एक बरसतक लड़कीका ब्याह नहीं रोक सकेंगे। मैं कैसे उन लोगोंको मुँह दिखाऊँगी ? अब मुझे यह गाँव जीवन भरके लिए छोड़ना पड़ेगा।"

" तुम गाँव छोड़ दोगी तो मैं भी छोड़ दूँगा। देखो, मौसी! मैं उसके लिए अपनेसे भी अच्छा दामाद ढूँढ़कर ला दूँगा। जितना खर्च होगा सो सब दे दिया जायगा, तब तो उन्हें किसी बातका कष्ट न होगा।"

" जो जीमें आवे कर। लेकिन विश्वेश्वर! तूने बड़ी ही अच्छी लड़कीको पाँवसे ठुकरा दिया, इसके लिए तुझे जीवन भर पछताना पड़ेगा।" निराश होकर मौसी चुप हो रही। उनके हृदयमें बड़ी बेदना हुई। विश्वेश्वरने भी इस बातको समझा; पर उनका जो विचार था उसे वे पलट न सके। उन्होंने ब्याह न करनेकी मानों प्रतिज्ञा ही कर ली थी; किसी तरह उनका मन ब्याह करनेकी ओर जाता ही न था। अब वे समझे कि किस लिए मौसीने सतीको बुलवाया था। इस बातको नहीं समझ कर उन्होंने जो निर्लज्ज व्यवहार किये थे और सती लाजसे जिस प्रकार जमीनमें गड़ जाया करती थी, उसकी याद उन्हें अब आई। वे एकाएक बोल उठे " छिः! छिः! मैंने बड़ा बुरा किया!"

दूसरे दिन विश्वेश्वरने रामशंकरके घर जाकर बड़ी आत्मीयता दिखलाते हुए कहा कि " मैंने एक बहुत अच्छा लड़का ठीक किया है और

भाईको बहिनके ब्याहमें जो अधिकार है, उसी अधिकारसे इस बिवाहका कुल खर्च मैं अपने ऊपर लेना चाहता हूँ।"

रामशंकरको तो क्रोधमें चारों ओर अँधेरा दिखने लगा। उनके आत्मसम्मानमें बड़ा आघात पहुँचा। उन्होंने सोचा, क्या मेरी कन्या ऐसी हीन है? उन्होंने गर्वित वचनोंसे कहा,—"भैया! मैं तुम्हारा बहुत ऋणी हूँ, अब और अहसान सिरपर मत लादो। अपनी कन्याके ऋणसे मैं स्वयं उत्तीर्ण होना चाहता हूँ, तुम इस बारेमें चिन्ता मत करो।"

विश्वेश्वरने बहुत कुछ समझाया बुझाया, पर ब्राह्मण अपनी बातसे न डिगा। आखिर उदास हो वे घर लौट आये और उन्होंने अपनी मौसीसे सब हाल सुनाया। मौसीने दुःख, लज्जा और अभिमानसे कहा, "मैं अब यहाँ नहीं रह सकती। कुछ दिनके लिए काशीवास करूँगी। मैं इन लोगोंको कैसे मुँह दिखाऊँ? मेरे भेज देनेकी तैयारी कर दे।"

विश्वेश्वरने चुपचाप सब प्रबन्ध कर दिया। मौसी काशीके लिए रवाना हो गई। पहले यही ते पाया था कि विश्वेश्वर स्टेशन तक पहुँचा कर लौट आयँगे, पर वहाँ जाने पर वे भी ट्रेनपर सवार हो गये। मौसीने पूछा, "तू कहाँ जायगा?"

"जहाँ तुम जाओगी। मौसी! क्या तुम मुझे फिर बे-माँका करके चली जाओगी? माके मरनेसे मैं बे-माँका नहीं हुआ था; क्यों कि तुम थीं, पर अब तुम बेमाँका बनाया चाहती हो?"

अन्नपूर्णाने और कुछ न कह कर विशूका सिर अपनी गोदमें खींच लिया।

छठा परिच्छेद।



जब आदमीका सब कुछ चला जाता है तब जिस प्रकार उसके मनमें एक तीव्र निश्चित भावसा आ जाता है, मृत्युके बाद यन्त्रणासे कातर हुए मुखपर जैसे शान्तिकी पीली छटा छा जाती है, सतीका विवाह कर देनेपर रामशंकरने भी वैसे ही एक मुक्तिका निःश्वास लिया। मानों उनकी जानमें जान आ गई। नवग्रामके तीनकौड़ी लाहिड़ीने कुल ३०० रु० नकद दहेज लेकर सतीको पत्नीरूपसे ग्रहण कर लिया—नहीं नहीं उसे पत्नीकी उपाधि दे दी। क्यों कि विवाहके बाद वह अपनी ससुराल नहीं गई। लाहिड़ीजीने केवल निःस्वार्थ परोपकारकी पराकाष्ठा दिखलाने और रामशंकर भट्टाचार्यके जाति-कुलकी रक्षा करनेके लिए ही यह कार्य्य किया है! आपको जब कभी रुपएकी दरकार होती थी तब इसी तरह किसी कन्याके भारसे दुखी गृहस्थको खोज लेते थे और उसका भार उतारकर अपनी भी ज़रूरत रफा कर लेते थे। इस समय उन्हें भय हो गया था कि अब मेरा यह व्यवसाय अधिक दिन न चलेगा, चित्रगुप्त भी उनका हिसाब करने लगे थे; इसलिए वे इन थोड़ेसे दिनोंमें जितना परोपकार हो सके उतना करनेके लिए कमर कस चुके थे। किन्तु इनकी बात अभी छोड़ दीजिए। रामशंकर इस समय निश्चिन्त हैं। कन्याका विवाह न कर सकनेके कारण जाति जानेका डर था उससे छुटकारा हो गया और धन सम्पत्तिके नाम एक मकान था वह भी एक कोठीवालेके नाम साढ़े तीनसौपर रेहन कर दिया। घरद्वारसे भी निश्चिन्त ही हो गये! क्यों कि उन्हें यह अच्छी तरह मालूम था कि अब इस जन्ममें रेहनका रुपया अदा नहीं हो सकेगा। बस, अब अवलम्ब महीनेके दस रुपयोंका और अपने

अकालवृद्ध रुग्ण शरीरका रह गया। यह भी वे समझ गये हैं कि अब मृत्यु आनेमें बहुत देर नहीं है। जितने दिन जी रहे हैं वही बहुत है। उन्हें जीना, सच पूछिए तो बड़ा भार हो गया है। अगर सती सामने आती है तो उसे दुरदुरा देते हैं। कभी किसी दिन बड़ा लड़का घर आता है तो उसे भी गाली गलौज देकर घरसे निकल जानेको कहते हैं, छोटे लड़केको मारते पीटते हैं, सावित्रीको देखकर मुँह छिपा लेते हैं, भौजाई और स्त्रीसे कभी भर-मुँह नहीं बोलते। पुत्र कन्या कभी रोते हैं, कभी रूठते हैं, जेठानीजी शोर गुल मचाकर आसमान सिर पर उठा लेती हैं, पर जाह्नवी बेचारी चुपचाप बिना किसीसे कुछ कहे सुने रोया करती है। किसी किसी दिन रामशंकरके कलेजेका दर्द और दमा बहुत बढ़ जाता है। रातरात भर 'हाय दैया' मची रहती है, राम राम करते भोर होती है। उस समय जो लोग रामशंकरकी सेवा शुश्रूषा करते हैं उन्हें भी वे जली कटी सुनाते हैं; पर वे लोग चुपचाप सब कुछ सह लेते हैं।

इस तरह सतीके विवाहके बाद छः महीने बीत गये। क्रमशः उनका शरीर निर्जीव होता चला जाता था, पर कोठीके काममें उन्होंने कभी ढिलाई न की।

एक दिन तीसरे पहरसे ही आकाशमें घनघटा छाई हुई थी। सती और सावित्री घरके काम काज कर रही थीं। हाथका काम छोड़कर जाह्नवी बारबार अनमनीसी होकर दरवाजेकी ओर झाँकती थी। ऐसा दुर्दिन है और स्वामी अभीतक आये नहीं, कैसे आवेंगे। हाथमें सुमरनी लेकर जेठानीजी झटपट गाँवभरकी प्रदक्षिणा कर आईं। उन्होंने सोचा कि ऐसी घनघोर घटा उठी है कि लड़कियोंकी निन्दा और समालोचना करनेका इससे अच्छा अवसर ही नहीं मिलेगा! दूसरे दिनकी प्रतिज्ञा प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

एकाएक बड़े जोरकी आँधी आई । छप्परोंके खपरे गिरने लगे। टूटा फूटा मकान मानों थर थराकर काँप उठा। आँगनमें काजलके से घने बादलोंके कारण अँधियारी छा गई। केलेके पौधे जमीनमें सट गये। चबूतरेके आम्रवृक्षसे आमोंको टपकते देख माथे पर दौरा रख जेठानीजी आम बीनने चलीं। और कोई नहीं मिला तो आँधीको ही गालियाँ देनें लगीं। कालीको भी आम बीननेके लिए उद्यत देखकर सती उसे गोदमें ले फुसलाने लगी। जेठानीजी उसे भी खरी खोटी सुना रही थीं; लेकिन उनका वह तीव्र स्वर भी आँधीके झोकोंके साथ उड़ जाता था।

जाह्नवी देवी दरवाजेपर खड़ी थीं। मेघके अन्धकारको भेदकर उनकी व्यग्र और व्याकुल दृष्टि बहुत दूरतक पहुँच रही थी। सावित्रीके डरे हुए व्याकुल नेत्र माताके मुँहको ही एकटक देख रहे थे। उसके खुले हुए रूखे बाल हवामें उड़ रहे थे और चेहरेसे ऐसा भाव झलक रहा था कि वह विपदकी मारी हुई भयसे कातर हो रही है। एक बार धीरेसे उसने पुकारा, "माँ!"

लेकिन माताने कोई उत्तर न दिया। बड़े जोरसे बूँदें पड़ने लगीं। जेठानीजी तेजीसे दौड़ी हुई लौट रही थीं कि इसी समय फिसल कर दौरा लिये ही गिर पड़ीं! सावित्री दौड़ी हुई गई और उन्हें उठाने लगी। चोट लगनेसे जेठानीजी रो उठीं। जाह्नवी तब भी अचल प्रतिमाकी भाँति द्वारपर खड़ी रही।

इधर प्रकृतिका तुमुल आन्दोलन जारी था। नीचेकी चीज ऊपर और ऊपरकी चीज नीचे हो रही थी। मानों कोई भारी उत्पाती उपद्रवी लड़का खुशीके मारे नाच रहा हो। इस महाशब्दके मध्य भी जाह्नवीने बाहर किसी चीजके गिरने और साथ ही 'गों गों' करनेकी आवाज सुनी। वे चटपट दौड़ीं। उनके साथ ही सती और सावित्री

भी दौड़ीं। रह-रहकर पैर फिसलने लगे। तथापि वे सब बाहर ड्योढ़ी-पर दौड़ती हुई पहुँचीं।

ड्योढ़ीके बाहर रामशंकर औंधे पड़े थे। जाह्नवीने जाकर उन्हें उठाया। दोनों कन्यायें आर्त्तस्वरसे रोने लगीं "बाबा—बाबा!"

"चुप रहो, चुप रहो, मैं अकेले सँभाल नहीं सकती, तुम भी पकड़ो।"

जाह्नवी उस समय बेतकी तरह काँप रही थी। प्रकृतिकी भाँति उसकी आँखोंके सामने भी दारुण अन्धकार छा गया। बड़े कष्टसे तीनों जनी मिलकर भट्टाचार्यजीकी संज्ञाहीन देहको घरके भीतर ला सकीं। पैरकी चोटसे जेठानीजी कराह रही थीं। पर इस घटनासे वे भी चुप हो रहीं। सतीने पुकारा "चाची! जल्दीसे आग जलाओ!"

लँगड़ाती हुई जेठानीजी अँगीठीमें आग सुलगाने लगीं। भीगे वस्त्र निकालकर, सारी देह अच्छी तरह पोंछ-पाँछकर, रामशंकरको सूखे कपड़े पहराये गये और वे बिछौनेपर सुला दिये गये। तबतक उन्हें होश नहीं था। टूटे हुए सन्दूकके भीतरसे एक फटा हुआ फलालैनका कपड़ा बाहर निकाल कर सती उससे अपने पिताके हाथ पैर मलने लगी। इधर आग भी सुलग गई। कपड़ा गर्मकर हाथ पैर सेंके जाने लगे। जाह्नवी और सती इसतरह चुपचाप खड़ी थीं, मानों काठ मार गया हो। सावित्रीने रुँधे हुए गलेसे एक बार पुकारा, "बाबा!"

अबतक डरा हुआ काली एक कोनेमें खड़ा था। अबके सावित्रीका शब्द सुननेसे उसे थोड़ासा साहस हुआ और वह रोने लगा।

सतीने कहा, "काली! रोता क्यों है? चुप रह, बाबा अच्छे हैं।" फिर माँसे कहा, "माँ! थोड़ासा दूध गर्म कर दो।"

दबी जबानसे जाह्नवीने कहा, "तू ही जाकर कर ले, मुझसे तो उठा नहीं जाता।"

सतीने दूध गर्म किया। वह चम्मचसे थोड़ा थोड़ा दूध पिताको पिलाने लगी। अब रामशंकर कुछ सगबगाये। उन्होंने दूध पीकर जोरसे कई बार निश्वास लिया। सब लोग स्थिर होकर बैठे। अबतक किसीको मानों हाथ पैर हिलानेका भी साहस न होता था। क्रमशः रामशंकरकी आँखें खुलीं और वे करवट बदलनेकी चेष्टा करने लगे। सतीने पुकारा—“बाबा!”

कन्याकी ओर देखकर रामशंकरने कहा, “कौन है?”

“मैं हूँ बाबा! सती।”

“मरते हुए रामशंकर न जाने कौनसी शक्ति पाकर उत्तेजित हो उठे और दाहिने हाथसे बड़े जोरसे कन्याको दूर ठेलकर बोले, “चली जा, हट जा, भाग जा यहाँसे, सत्यानाशिनी! अब मेरा क्या करेगी? मुझे खायेगी क्या? दूर हो मेरे सामनेसे।”

सती हट गई। जाह्नवी चुपचाप सिर नीचा किये स्वामीका शरीर सेंकने लगी। सावित्री भी नीचेकी ओर आँखें किये बैठी रही। जेठानीजी भुनभुनाती हुई बोलीं, “मरनेको हो गये, तो भी बकनेका स्वभाव नहीं छूटता!”

जाह्नवीने कहा, “क्या अब कुछ अच्छा मालूम होता है? तबीयत कैसी है?”

“कैसी है? आज ही अन्तिम दिन है। अब क्या देखती हो? मैं चला।”

जाह्नवी चुप हो रही। सावित्री रोकर बोली, “बाबा! ऐसी बात मत कहो।”

तीखी नजरसे कन्याकी ओर देखते हुए रामशंकरने कहा, “क्यों, इसमें दुःखकी बात क्या है? मैंने कभी बापका सा लाड़ प्यार तुम्हारा

किया है जो तुम्हें मेरा मरना अखरेगा ? तुमने जन्मभर आधा पेट खाया है, रूखा-सूखा खाकर इतनी बड़ी हुई हो। मेरे मर जानेपर भी वही—न नीचे तेल न ऊपर नोन ! तब दुःख कैसा ? मैं जीऊँगा तो तेरा भी ब्याह किसी बूढ़ेके साथ कर दूँगा। मैं क्या तुम लोगोंका बाप हूँ ? कभी नहीं। उत्तेजनाकी अधिकतासे रामशंकर फिर अर्धमूर्च्छित हो पड़े। क्षण ही भर बाद जरा होशमें आकर बोले, "हरि आया है ? दूर करो, उसे हमारे सामनेसे अभी दूर करो।" सावित्री बोली, "कहाँ ? भैया कहाँ आये हैं ?" "नहीं आया है। अच्छा ही है। मैं उसके हाथका पिण्ड भी नहीं लूँगा। काली देगा। वह जहन्नुममें जाय।"

जाह्नवीने पतिके मुँहपर हाथ रखकर कहा, "चुप होकर सो रहो, जिसमें कष्ट कम हो। सो क्यों नहीं जाते ?"

"अब क्या कष्ट कम होगा ? नहीं अब एक ही दफा सब कष्टोंका अन्त हो जायगा।"

सती खिसककर दरवाजेके पास जा बैठी थी। द्वार थोड़ा खुला हुआ था। तब भी बूँदाबाँदी हो रही थी—बाहर मेंढ़कोंकी टर्रटेंकी आवाज और भयानक अँधियारी फैली हुई थी। तेज हवाके झोंके आ—आकर बदन पर सप-सप लगते थे। सती एकटक उस अन्धका-रको देख रही थी। माल्दम होता है, वह यही सोच रही थी कि इस अँधे-रेमें यात्रा करने पर क्या कभी उषाका आलोक नहीं दिखाई देगा ?

रामशंकरको इस घड़ी थोड़ी नींद आ गई थी; अब वे एकाएक जग पड़े और बोले, "कालीकी माँ !"

"क्या कहते हो ?"

"काली कहाँ है ?"

"तुम्हारे पास ही तो सोया हुआ है।"

बड़े कष्टसे रामशंकरने उसके माथेपर हाथ रक्खा। जाह्नवीने पूछा, "यह क्या करते हो?"

"आशीर्वाद देता हूँ। सावित्री क्या सो रही है?"

"बाबा!" कहकर सावित्री पिताके सम्मुख आ गई। पिताने कहा, "आ, तुझे असीस दूँ।"

"बाबा! ऐसी बात मत कहो। बड़ा दुःख होता है, बाबा!" यह कहते कहते सावित्री रोने लगी।

जाह्नवीने कहा, "सावित्री! चुप रह, रो मत। रोनेसे उन्हें तकलीफ होगी।"

"नहीं नहीं, तकलीफ कैसी? बेटी! आशीर्वाद देता हूँ। हरि! हरि नहीं है। अच्छा उसे भी असीस देता हूँ। हजार है, पर है तो अपना ही लड़का।"

"बाबा! जीजीको क्यों नहीं आशीर्वाद देते! उसे भी आशीर्वाद दो!"

रामशंकर बीचबीचमें रुकते हुए बोले, "तुम्हारी जीजीको? सतीको? आशीर्वाद दूँ या उसका उपहास करूँ? बाप—बाप होकर मरतीबेर लड़कीका उपहास कर जाऊँ?"

क्षीणकण्ठसे जाह्नवीने कहा, "तुम यह क्या कह रहे हो? देखो तुम्हारी सती दरवाजेके पास बैठी है। एकबार बुलाओ तो सही।"

रामशंकरने उधरको दृष्टि की। क्षीणकण्ठसे बोले, "सती! आ, बेटी!"

सती जहाँ तक बन पड़ा सिर नीचा किये, बाँयें हाथसे आँखें मूँदे, पिताके पायँताने आकर बैठ रही।"

भट्टाचार्यजी कहने लगे, "वहाँ नहीं, इधर आकर बैठ। तुझसे दो एक बातें कहनी हैं। तुझसे मैंने बहुत बुरा भला कहा है।"

सती मुँह फेरकर पिताके सिरानेके पास आ बैठी। उसकी ओर छिन भर देखकर रामशंकरने कहा, "तुझे आशीर्वाद ! नहीं, आशीर्वादकी कोई दरकार नहीं है। होती—यदि—यदि तुझे विश्वेश्वर—नहीं उस बात—उस बातसे अब कौन काम है। क्या करूँ ? आशीर्वाद दूँ ? सुन बेटी ! बापके पापोंके फल लड़के बच्चे भी भोगते हैं। इसीसे तुम लोग कष्ट भोगती हो और आगे भी भोगोगी। क्या करूँ ? कोई चारा नहीं है। जानतेमें तो मैंने ऐसा कोई पाप नहीं किया। तब यह पूर्वजन्मके पापोंका फल है। तुझे मैं किस मुँहसे आशीर्वाद दूँ ? आशीर्वादकी जड़ तो मैंने ही अपने हाथोंसे काट दी है। तब यह समझ रक्खो कि बहुत लाचार होकर मैंने अपनी सन्तानकी अपने हाथों हत्या की है। क्या करूँ, कोई उपाय नहीं था।"

सतीको काठ मार गया था, वह चुपचाप बैठी रही। जाह्नवीने कहा, "इस घड़ी ये सब बातें रहने दो। जरा सो रहो।"

"सोऊँ ? सोऊँ काहेको ? कुछ देर बाद ही तो ऐसी गम्भीर निश्चिन्त निद्रा आवेगी कि जिसका नाम ! बड़ी शान्ति होगी ! इसी लिए तो जै घड़ी जीता हूँ दो चार बातें कर लेता हूँ। सती ! कहाँ गई बेटी ? नहीं, यहीं तो है ! अच्छा, सुन, क्या कहूँ ? याद नहीं आता। हाँ—आशीर्वाद ! क्या कहकर तुझे आशीर्वाद दूँ ? मैं तो अब चला—तुझे—"

स्थिर अविकृत कण्ठसे सतीने कहा, "आप जायँगे बाबा ? नहीं। आपकी सेवा मैं अच्छी तरह नहीं कर पाई, इसलिए आशीर्वाद दीजिए कि मैं आपके पास पहुँचकर भली भाँति सेवा कर सकूँ।"

"मेरे पास ? हाँ ! वह बड़े आरामकी जगह है, इसमें तो सन्देह नहीं। विश्राम ! केवल विश्राम ! बेटी तू आयगी ? क्या तुझे बहुत कष्ट हो रहा है ? बेटी ! इस अल्प वयसमें, इस नवीन जीवनमें ही

तुझे इतनी भ्रान्ति हो गई ? तब, आ, मेरी गोदमें आ,—आ बेटी ! जैसे लड़कपनमें गोदमें खिलाता था, वैसे तुझे गोदमें लिए ही चला चलूँ।"

स्वामीको शान्त करनेके लिए जाह्नवी उनके मस्तकपर और मुँहपर हाथ फेरने लगी। रामशंकरने कहा, "अपराधी ! हाँ, मैं सरासर अपराधी हूँ ! क्या अपराध किया है सो सुनो। दरिद्र होने पर भी क्यों मैंने ब्याह किया ? क्यों गृहस्थ हुआ ? क्यों बालबच्चोंका पिता बना ? पर दोषी क्यों होऊँगा ? मेरा ब्याह हुआ इसमें शक नहीं, पर इस दोषके दोषी मेर माता पिता हैं। उनके पापोंका फल मैंने भोगा और मेरे पापोंका फल तुम लोगोंने पाया। फिर दोष कैसा ? तब आ बेटी, मैं तुझे आशीर्वाद दूँ। दूँगा, पर कुछ देर बाद—बाद—सोचता हूँ—उसके बाद।"

श्रान्त रोगी यह कहते कहते सो गया।

रात्रि प्रायः बीत चुकी है। माताके बारबार कहनेपर सावित्री सेजके पास ही सो गई थी। सतीको नींद आ रही थी; पर वह दीवारके सहारे बैठी हुई थी। अकेली जाह्नवी ही चुपचाप अपने स्वामीकी ओर देख रही थी। वह एकाएक सतीकी देहपर हाथ रखकर बोली, "सती !" आँखें मलते मलते सती बोली, "क्यों, माँ !" "देख, उनके गलेमें खरखराहटसी क्या मालूम होती है, मुँह कैसा कर रहे हैं ? क्या करूँ बेटी !"

थोड़ी देरतक देखकर सतीने कहा, "माँ ! डाक्टरको बुलाऊँ ?"

"अभी तो रात बाकी है ? कौन जायगा ?"

माता और भगिनीकी इतनी सावधानीपर भी सावित्रीकी नींद खुल गई। वह उठ खड़ी हुई और बोली, "मैं जाऊँगी।"

"तू बच्ची है। अकेली जाकर क्या करेगी ?"

"माँ तुम आग जलाओ। मैं जाती हूँ। अभी लौटूँगी। रमाकान्त बाबूका मकान बहुत दूर नहीं है।"

सती चली गई। जाह्नवी आग जलाकर स्वामीके हाथ पैर सेंकने लगी। लेकिन दृष्टि उसकी दरवाजेहीकी ओर लगी रही। प्रायः आधे घण्टेके बाद सती डाक्टरको साथ लेकर आई। सबके जीमें जी आया। रोगीकी हालत देखकर डाक्टरने कुछ नहीं कहा, फीस भी नही ली; वे सिर्फ दो पुड़ियाँ दवा देकर चले गये।

पर रामशंकरको फिर होश नहीं हुआ। हालत धीरे धीरे खराब ही होती गई। तब बड़े जोरसे रो-रोकर जेठानीजीने दो चार आदमी बुलाये और वे भट्टाचार्यजीको तुलसीके नीचे ले आये। जाह्नवी दोनों हाथोंसे स्वामीके पाँव पकड़कर और उनमें अपने मुँहको छुपाकर रोने लगी; खुलकर चिल्ला नहीं सकी। सावित्री गला फाड़ फाड़कर 'बाबा!' कह कहकर रोने लगी। काली भी खूब रो रहा था। सती चुपचाप गंगाजल लेकर पिताके मुँहमें डालने लगी। उसकी आँखोंसे आँसु-ओंकी झड़ी लग रही थी। जेठानीजी "गंगा-नारायण-ब्रह्म" कहने लगीं। उस समय प्रतिदिनके समान ही चारों ओर उषाकी ज्योति फैल रही थी।

सातवाँ परिच्छेद।



जैसा सब स्थानोंमें हुआ करता है, संसारकी जो नित्य—नित्य ही क्यों, प्रतिनिमेषकी घटनायें हैं, वे सब भट्टाचार्यपरिवारके हाहा-कार और आर्त्तनादके होते हुए भी बन्द न हुईं और देखते देखते दिनपर दिन बीतते गये। गाँवके परोपकारी नवयुवकोंने रामशंकरके

अन्तिम संस्कारमें बड़ी सहायता पहुँचाई । जाह्नवीके ही द्वारा उनके मुँहमें आग दिलवाई गई, क्यों कि सपूत हरि उस समय गाँवमें नहीं था, चाँदपुरके बाबुओंके साथ कलकत्ते गया था। आग देते समय जाह्नवी बेहोश हो गई। सबोंने उसे स्नान कराके, कपड़े बदलवाके और कन्याओंके पास घरपर पहुँचाकर अपने कर्त्तव्यका पूरा पूरा पालन किया।

शोकसे भरे हुए पहाड़के से दिन भी कटते ही गये, क्योंकि दिन किसीका मुँह नहीं जोहते, वे चले ही जाते हैं। केवल मनुष्य ही बल-पूर्वक उनके मध्य अपना स्थान बना लेता है। माँ कुछ बोलती नहीं, हिलती डोलती भी नहीं। सती और सावित्री निरन्तर उसका मुँह निहारती हुई दिन बिताती हैं। काली जब बीचबीचमें रोने लगता है, तब वे ही उसे चुप कराती हैं। श्राद्धको अब दो ही दिन और बाकी हैं। कोठीवालोंने धर्मबुद्धिसे रामशंकरके इस महीनेके वेतनमेंसे, हिसाबके मुताबिक, पाँच आना, एक पैसा, कुछ दुगड़े—दमड़ी काट कर, बाकी नौ रुपये ग्यारह आने और कुछ कौड़ियाँ भेज दीं। सतीने उन्हें लेकर रख दिया है; क्योंकि श्राद्धमें जरूरत पड़ेगी। चाहे भोजन न मिले, पर पिताका श्राद्ध तो जरूर होना चाहिए। रोज वे लोग भाईके आनेकी बाट देखती हैं; पर भाईका पता नहीं। चाँदपुर आदमी भेजा गया, पर वहाँसे जवाब मिला कि, "हरि यहाँ नहीं, कलकत्ते है।" उस आदमीने सतीके कहे अनुसार हरिको पिताकी मृत्यु आदिका सम्वाद भेजनेका अनुरोध तो किया है; पर सती जानती है कि यह खबर भाईको मिलनेकी नहीं।

क्रमशः श्राद्धका दिन आ पहुँचा। सबोंने जब जाह्नवीको ले जाकर कार्य्यस्थानमें बैठाया तब मानों उसे होश हुआ। इन कई दिनों तक

वह बिलकुल अन्यमनस्क हो रही थी, जो कन्यायें कहतीं वही करती थी। आज उसे चेतना हुई, बोली "सती! मुझसे यह काम क्यों कराया जाता है? हरि कहाँ है?"

सती मुँह नीचा किये बोली, "माँ! भैया नहीं आये।"

"नहीं आया? क्या तुमने खबर नहीं भिजवाई?"

"वे कलकत्ते हैं। खबर भेजी गई थी; पर जान पड़ता है कि उन्हें मिली नहीं।"

जाह्नवी सोच विचारमें पड़ गई, बोली "तब कालीसे कराओ। उसके हाथसे जो कुछ होगा, उसीसे उनकी तृप्ति होगी।"

दिन भरका उपवास करके छः बरसके बालक कालीने पिताको पिंड-दान किया! कार्यशेष होनेपर निर्जीवप्राय बालकको माताकी गोदमें देकर सती बोली, "माँ, ज़रा इसके मुँहकी ओर देख, नहीं तो यह भी जीता नहीं बचेगा। भैया, जरा होश सम्हाल, नहीं तो हम सब किसका मुँह देख कर जीएँगे!"

जाह्नवी उठ बैठी। उसने अपने हाथसे बालकको हविष्यान्न खिला कर गोदमें ले लिया। गाँवके कुछ धनियोंने बिना कहे माँगे आप ही कुछ रुपये सहायताके लिए भेज दिये थे। मामूली तरहसे दो चार ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया और उसीसे रामशंकरकी दारिद्र्य-पीडित आत्माकी तृष्णा-क्षुधाकी यत्किंचित् शान्ति की गई।

* * * *

इधर हरिशंकर बाबुओंके साथ कलकत्तेमें दुर्गेशनन्दिनीका अभिनय देख रहे थे; क्योंकि उन्हें भी अपनी मण्डलीमें वही नाटक खेलना था। हरिको आयेशाका अभिनय करना जिसमें अच्छी तरह आ जाय इसी लिए बाबू लोग उसे कलकत्ते लाये थे। लौटने पर उन लोगोंने अपने

यहाँ भी वही नाटक खेला। जिस दिन खेल होनेवाला था उसी दिन हरिके बापका श्राद्ध था। नाटकमें किसी तरहका विघ्न न हो, इस लिए हरिको उन लोगोंने घरका हाल कुछ भी नहीं बतलाया। हरिके गाँवसे चाँदपुर तीन कोससे अधिक फासले पर न होगा, पर इस दरिद्रकी मृत्युका सम्वाद वहाँ तक भी न पहुँच सका!

जो हो, खेल बड़े मजेसे हो गया। हरिने आयेशाका ऐसा अच्छा अभिनय किया कि जहाँ तहाँ उसकी तारीफ सुन पड़ने लगी। हरि मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ, पर न जाने क्यों उसके जीमें आया कि चलो जरा घर हो आऊँ। बाबू लोग कुछ नहीं बोले, वह अपने गाँवकी ओर चल दिया।

रामशंकरकी मृत्युके बाद पंद्रह दिन बीत गये हैं। इन कई दिनोंमें भट्टाचार्य-परिवारके शोकका वेग भी कम हो गया है। शोक मनानेका उन्हें अवसर ही कहाँ था? जो कुछ श्राद्ध होनेपर बचा हुचा था, उसीसे इतने दिन तक किसी तरह काम चलता रहा है सही; पर अन्धकारमय भविष्यत्की कराल छाया सती और सावित्रीके मुखपर झलक रही है। उस दिन वे माताकी शय्याके पाससे उठकर पाटको जलमें भिगोनेका उद्योग करती थीं। कपाससे रुई निकालनेके लिए काली निकलि गयी थी। भोजनके बाद सबोंने जाह्नवीको उसारेमें एक चटाईपर सोये हुए कालीके पास सुला दिया। सोये ही सोये बच्चेके सिरपर हाथ रखकर वह शून्य नयनोंसे मकानकी बँड़ेरीकी ओर देखने लगी। मनमें तरह-तरहकी चिन्ताओंकी तरंगें उठ रही थीं। उसका यह बहुत दिनोंका गुँथा हुआ जीवन इस घड़ी ग्रन्थिहीन शृंखलाहीन और विपर्य्यस्त हो गया। पृथ्वी उसी तरह हँस रही है; दिन वैसे ही बीत रहे हैं; सूर्य्य वैसा ही प्रकाशमान् है; चन्द्रमाकी

किरणें वैसी ही ठण्डी हैं; रात भी उसी तरह तारोंके मारे जगमगा रही है। चारों ओर यह कैसी निर्दयता है! कोई किसीके लिए एक दिन भी शोक नहीं करता! सबको जाने दो, मेरा अपना ही हिया क्या उन सबोंसे भी कठिन नहीं है?

हरिसे सहसा घरमें पाँव नहीं दिये गये। उसे ऐसा मालूम हुआ, मानों कुछ बुरा हो गया है। घर एक-बारगी श्रीहीन, मलिन, अन्धकार-मय हो रहा है। उसने सोचा कि शायद पिताका दमा उखड़ आया है। डरते डरते आँगनमें पाँव रखकर हरिने पुकारा, "बाबा!"

सती और सावित्रीने अपना अपना काम छोड़ दिया। जाह्नवीने भी चौंककर आँगनकी ओर देखा। उसको ऐसा जान पड़ा, मानों वे (स्वामी) हरिके साथ साथ आये हैं। पर देखा—नहीं, वे साथमें नहीं हैं—हरि अकेला है। जाह्नवीने आँखें मूँद लीं।

हरिने फिर पुकारा, "बाबा!" कानमें आवाज पड़ते ही जेठानी-जीकी नींद टूट गई। वे जल्दीसे उठीं और आँगनमें आकर कहने लगीं, "अरे कौन है रे? हरिया? राम रे राम! ऐसा मुँहजला कपूत निकला कि दुनियामें न होगा। अब 'बाबा बाबा' क्या पुकारता है! बाबाको स्वर्ग गये सोलह दिन हुए। आकर बापके न आग दी, न पिण्ड!! दो अँजली पानी भी न दिया! भाड़में जाय ऐसा कपूत बेटा!" इसी तरह उन्होंने बातोंका तार बाँध दिया।

हरिके पैर भर आये, वह बैठ गया। क्या ऐसा हो सकता है? सामने सावित्रीको देख उसने विकलकण्ठसे कहा, "सावित्री! क्या हुआ है?—क्या है? कहो न! ऐं? क्या बाबा नहीं है? यह क्या सच है सावित्री? नहीं, नहीं, यह कभी सम्भव नहीं।"

सावित्रीने दोनों हाथोंसे अपना मुँह छिपा लिया । माँ उसारेमें सोई हुई थी । उसपर हरिकी दृष्टि जा पड़ी ।—वह उजला कपड़ा पहने हुए है, बाल रूखे हैं, चेहरा पीला और झुलसा हुआ सा है—कैसी दीन स्त्री है ! यही क्या मेरी लक्ष्मीस्वरूपा हास्यमयी माता है ? हरिके पत्थर-केसे नेत्रोंसे भी पानी निकल आया । दोनों हाथोंसे आँखें बन्द करके वह चुपचाप बैठ रहा ।

बड़ी देरके बाद धीमे स्वरसे सावित्री बोली, "भैया ! जरा माँके पास चलो ।"

"माँके पास ! नहीं, मुझसे नहीं जाया जाता । मैं अब जाता हूँ ।"

सती आकर सामने खड़ी हो गई । कठिन स्वरसे बोली, "जो कर चुके, सो कर चुके, उसका तो प्रायश्चित्त नहीं है । इस समय माँको समझा बुझाकर धीरज बँधाओ और छोटे भाईको मरनेसे बचाओ । भागकर कहाँ जाओगे ? इससे क्या होगा ? जाओ, जाकर माँके पास बैठो ।"

सतीकी यह बात टालनेका हरिको साहस न हुआ । जैसे ही वह उठकर खड़ा हुआ वैसे ही जेठानीजी चिल्लाकर बोलीं, "छू मत, किसीको छू मत; पहले जाकर स्नान कर ले ।"

कुछ सोच विचारकर सतीने कहा, "चलो, पासवाले तालाबमें ही नहा लो । नदीपर जानेका काम नहीं है ।" घरसे बाहर होते ही भाग जायगा, यही सोचकर वह स्वयं साथ साथ जाकर भाईको खिड़कीके पास जो तालाब था वहींसे नहलवा लाई । स्नान करनेके बाद हरि माताके पास गया और बहुत देर तक रोता रहा ।

जाह्नवीने लम्बी साँस ले मीठे स्वरसे कहा, "बेटा, रो मत, रोनेसे क्या होगा ? तेरे ऊपर जो उनका क्रोध था, वह अन्त समय दूर हो गया था । वे तुझे अनेक असीसें दे गये हैं । इससे तेरा भला होगा—तू सुखी होगा ।"

हरिने बाबूलोगोंको भर पेट गालियाँ दीं। उसने शपथ खाई कि फिर उनके संसर्गमें न रहूँगा। कई दिन तक वह घरहीपर रहा। सतीने सोचा, सचमुच विपत्तिकी मारसे वह सुधर गया; पर दो चार दिनमें ही मालूम हो गया कि यह आशा वृथा है।

दो चार दिन टालमटोल करके एक दिन हरिने सतीसे कहा, "देखो बहन! बैठे ठाले रहनेसे काम कैसे चलेगा? मैं कामकाजकी खोजमें बाहर जाता हूँ। बीच बीचमें आया करूँगा। ये १०) मेरे पास हैं। इन्हें रक्खो और जिस तरह घर चला रही हो, चलाओ। मैं जल्दी ही आकर सब भार अपने ऊपर ले लूँगा। तुम लोगोंके घबरानेकी कोई बात नहीं है। अगर बीचमें कोई जरूरत आ पड़े, तो चाँदपुरके बाबुओंके ठिकानेसे मेरे नाम चिट्ठी भेजना, या किसी आदमीको ही भेज देना, मैं चला आऊँगा—समझीं? बैठे रहनेसे तो काम नहीं चलेगा।"

सोच-समझकर सतीने चुपचाप रुपए ले लिए। सावित्री करुणा-भरे स्वरसे बोली, "और एक दिन रह जाओ भैया! तुम्हें देख कर माँको कुछ धीरज हुआ है। बादको चले जाना।"

"पगली है क्या? बैठे रहनेसे कहीं काम चलता है? देख, माँसे अभी मत कहना। शायद वे रोने लगें। मैं चला जाऊँ तब कहना।"

साँझ होनेपर जाह्नवीने सावित्रीको पास बुलाकर उसके रूखे और धूलि भरे हुए केशोंको सँवार देना चाहा। सावित्रीकी आँखोंसे कई बूँद आँसू टपक पड़े। उसने माँकी नजर बचाकर उन्हें पोंछ डाला और कहा, "आज रहने दो और किसी दिन सँवार दीजियो।" जाह्नवीके हाथ कमजोरीके मारे टूटे पड़ते थे, तो भी उसने कहा, "बड़ी जटासी बँध रही हैं, पीछे ये बड़ी कठिनाईसे सुलझेंगीं।"

रातका सारा काम-धन्धा खतम करके और रसोईघरका ताला लगाकर, सती कालीके दूधका कटोरा हाथमें लिये हुए आई। दूध छींकेपर रख वह ज्यों ही खड़ी हुई त्यों ही माँने कहा, "रसोईघरको बन्द क्यों कर आई? क्या हरि नहीं खाएगा? तुम दोनों नहीं खाओगी?"

"हरि खा चुका। रसोईघरमें अब कोई काम नहीं है।"

"तू नहीं खायगी? हरि कहाँ गया?"

सिर नीचा किये सतीने कहा, "नौकरीकी तलाशमें चाँदपुर गया है।"

"ऐं, मुझसे तो नहीं कह गया!"

"तुम रोने लगोगी, इसी डरसे तुमसे नहीं कह गया। कह गया है कि दो चार दिनमें लौटकर आऊँगा। बिना नौकरी किये काम कैसे चलेगा? खर्च-वेर्चके लिए दश रुपये दे गया है।"

जाह्नवी कुछ देर तक चुप रही। इसके बाद एक लम्बी साँस ले मृदु स्वरसे बोली, "रोऊँगी क्यों? उसे जिस तरहसे सुख हो वैसा करे।" फिर कुछ देरतक सावित्रीके बालोंकी जटा सुलझानेकी चेष्टा करके क्लान्त स्वरमें बोली, "सती! मुझसे नहीं बनता, तू ही जरा सावित्रीके बाल सँवार दे।"

सती सावित्रीके बाल सँवारने लगी। सावित्रीने इंकार किया; परन्तु उसे झिड़ककर सतीने झटपट उसके बाल सँवार दिये। जाह्नवी अपने बिछौनेपर जाकर सो रहीं। माँकी छातीके पास सिर रखकर और दाहिना हाथ उसकी देहपर रखकर सावित्री भी सो रही। सती बोली, "माँ, कुछ जलपान कर लो।"

"नहीं बेटी! दिक मत कर, मुझे नींद आती है।"

सती समझती थी कि माताकी यह निर्वाक् निस्पंद चिन्ता बिलकुल नींदके ही समान तन्मयतापूर्ण होती है। माताको जब चिन्ता आकर दबाती है, तब वे किसीकी बात नहीं सह सकतीं। लाचार उसने जाकर सोये हुए भाईको उठाकर दूध पिलाया और बहुत दुलार-पुचकार कर उसे सुला दिया। गायका दूध ही बालकका जीवन था। इसीसे गौकी सेवा-सहायतामें वह तनिक भी त्रुटि न करती थी।

रात बढ़ने लगी। उस दिन बड़ी असह्य गर्म्मी थी। दिया बुझाकर सती खिड़कीके पास ही आँचल बिछा कर सो रही। उसके लम्बे लम्बे जटा-बँधे केश सिवारकी तरह चारों ओर फैल गये। बाहर आकाशमें आषाढ़की घन-घटा घिरी है, एक भी तारा आसमानमें नहीं दीखता। प्रकाशका कहीं नामोनिशान भी नहीं है। स्तंभित पृथिवी मानों उसीकी तरह अपना मलिन आँचल बिछाकर किसी कोनेमें जा पड़ी है; अवसाद और विषाद उसके भी हृदयमें भरा है। मानों वह प्रभात कालमें फिर उठकर खड़ी हो सकेगी।

सती नहीं समझ सकी कि मेरे केलेजेपर यह पत्थरका सा बोझा क्यों कर पड़ा हुआ है। जब काममें लगी रहती हूँ तब तक तो अच्छी रहती हूँ; पर जहाँ फुर्सत मिली कि यह बोझा आकर धर दबाता है। और कितने दिन इस तरह बीतेंगे ? क्या यह बोझा सिरपरसे कभी न उतरेगा ? रोनेको बहुत ही जी चाहता है, पर रोया नहीं जाता।

फिर उसने पृथ्वीकी ओर देखकर सोचा "ओह! कैसा अन्धकार है! क्या इस अन्धकारका अन्त नहीं है ?" आकाशकी ओर दृष्टि फेरनेपर उसने देखा, एक तारा झिलमिला रहा है। वह सोचने लगी, क्या यही मेरे बाबा हैं ? वे मरती बेर मुझे बुला गये हैं! क्या अब भी मुझे पुकार रहे हैं ?"—सोचते ही सोचते उसे ऐसा मालूम हुआ मानों

वह तारा क्रमशः उज्ज्वल और बिकट आँखोंसे उसकी ओर देख रहा है। डरके मारे सतीने खिड़की बंद कर दी और वह माके पास आकर सो रही। सोये हुए भाई, बहन और माताको एक बार स्पर्श करके वह अस्फुट कण्ठसे बोली, " नहीं, नहीं, मैं नहीं जाना चाहती।"

तीन महिने बीत गये। बीचमें और भी कई बार आकर हरि कुछ रुपये दे गया है। उनसे और अपनी मेहनतकी कमाईसे सती सावित्री किसी तरह घरका खर्च चला रही हैं।

एक दिन सती तालाबमें नहाने गई थी। अब वह पहलेकी तरह नदीमें नहाने नहीं जाती।

सावित्री गायको भूसा दे रही थी। इसी समय चिट्ठीरसाने आकर पुकारा, " चिट्ठी है।" कालीने आकर चिट्ठी ले ली और जाकर माँको दे दी। जाह्नवी तुलसी-चौंतरा लीपते लीपते उसे बायें हाथमें लेकर पढ़ गई। पढ़ते ही काँप उठी और उसी गीली जगहमें बैठ रही।

सती नहाकर लौटी और रसोईघरमें पानीका घड़ा रख माँके पास आ बोली, " माँ! रोती क्यों हो? क्या हुआ?" माँके मुँहसे बोली नहीं निकली।

कार्ड वहीं पड़ा हुआ था। सतीने उसे झटपट उठाकर पढ़ डाला—" नवग्रामके तीन-कौड़ी लाहिड़ीका स्वर्गवास हो गया। मैं उनका पुत्र हूँ। अपनी सौतेली माँको जतानेके लिए मैंने यह पत्र लिखा है। मेरी प्रार्थना है कि आप लोग श्राद्धके दिन बन्धुबान्धवके साथ उपस्थित हों, जिसमें कार्य्य भली भाँति सम्पन्न हो।"

सती भी बड़ी देरतक चुप रही। बहन हाथमें चिट्ठी लिये खड़ीकी खड़ी रह गई, यह देख सावित्री विस्मित होकर निकट चली आई। बहनके हाथसे चिट्ठी ले उसने भी पढ़ी। पढ़ते ही वह बड़े जोरसे चिल्ला उठी—" माँ! हाय माँ! हाय!"

जेठानीजी भी दौड़ी हुई आ पहुँचीं और रोती हुई सावित्रीसे सब हाल मालूम करके उच्चस्वरसे चीत्कार करने लगीं। क्रमशः गाँवभरके लोग इकट्ठे हो गये और हाय हाय करने लगे। बड़ा शोरोगुल मचा। जाह्नवी केवल दोनों हाथोंसे मुँह ढाँपकर रह गई। मानों रोना–कलपना तो उपहासमात्र था! जिस दिन सतीका विवाह हुआ था, रोनेका काम तो उसी दिन निबटा दिया गया था; अब आज काहेका रोना!

बहुत दिन चढ़ आया। जेठानीने कहा, "जो होना था सो तो हो गया! सती, आ बेटी! चल नहा आवें।"

सतीने स्थिरकण्ठसे पूछा, "पोखरेपर चलना होगा?" सबने कहा, "नहीं, यह क्या? नदीको ही जाना चाहिए।"

सतीका भाव देखकर सब मन-ही-मन निन्दा करती थीं,—"न जाने यह कैसी बिटिया है! घर नहीं ले गया था तो क्या हुआ? स्वामी तो था? माँगमें सिन्दूर देकर विवाह तो किया था? जरा रोई तक नहीं।"

सतीके हाथकी चूड़ियाँ फोड़ते समय जेठानीजीको सचमुच ही रो आया। एक ईंट उठाकर सतीने स्वयं अपनी चूड़ियाँ फोड़ डालीं!

स्नान हो चुकनेपर सती उजला कपड़ा पहिन सिन्दूर और हाथकी चूड़ियोंका विसर्जन कर घूँघटसे मुँह ढाँप सहजभावसे ही घरकी ओर चल पड़ी। सबकी नजर उसीपर थी, इससे एक अव्यक्त क्षोभके मारे उसका हृदय अवसन्न हो रहा था। दरवाजेपर पहुँचकर जेठानीजीने पुकारा, "काली! थोड़ीसी नीमकी पत्तियाँ तो दे जा। सती! अभी तू घरके भीतर मत जाना। नीमकी पत्ती दाँतसे काटकर और आग छूकर घरके भीतर जाना।"

सतीने बिना आपत्ति किये जैसा कहा गया वैसा ही किया। सावित्री घरके भीतर चली आ रही थी, इसी समय किसीने कहा, "सावित्री!

तू अभी यहाँ मत आना—कहीं जीजीका मुँह मत देख लेना! " सतीने झटसे अपना मुँह छिपा लिया। इतनेमें सावित्री दौड़ी हुई आई और यह कहकर कि " हाय बहन! तेरा ऐसा वेष किसने बनाया?" उसके गलेसे लिपट गई। इसपर सारी स्त्रियाँ उसको बुरा भला कहने लगीं। तब सती वहीं बैठ रही और सावित्री उसके कन्धेपर सिर रख, गलेमें बाँह डाल रोने लगी। सती उसकी आँखें पोंछकर उसे मृदुस्वरसे शान्त करने लगी।

जेठानीजीने आकर जाह्नवीसे कहा, " उठो, नसीबमें जो था सो तो हो गया। चलकर बिटियाको कुछ खिलाओ पिलाओ। रोनेसे क्या होगा?"

जाह्नवी उठ खड़ी हुई। ज्यों ही सतीके पास पहुँची कि वह भी उठ खड़ी हुई। कन्याकी वह विधवा-मूर्त्ति देख उसके धीरजका बाँध टूट गया, उसने आर्त्तस्वरसे चिल्लाना चाहा, पर मुँहसे एक शब्द भी बाहर न निकला—कन्याको दोनों बाहुओंसे लपेटकर छातीसे लगा लिया।

बड़ी देर बाद जाह्नवीने कहा, " सती! चल बेटी, थोड़ासा शरबत पी ले।"

सतीने सिर नवाये हुए कहा, " मुझे तो प्यास नहीं। तू ही थोड़ासा पी ले, तब तक मैं कुछ भोजन बना लूँ।"

" रसोई आज तेरी चाची बना रही है। तुझे नहीं बनाना होगा।"

" ऊः!" कह कर सती वहीं बैठ गई।

आठवाँ परिच्छेद।



विश्वेश्वर और अन्नपूर्णाको तीर्थभ्रमण करते करते एक वर्ष बीत गया। एक दफे विश्वेश्वरको पश्चिमी शहरोंको देखनेकी इच्छा हुई थी, किन्तु उस समय वे कामोंकी भीड़भाड़के कारण नहीं जा सके थे। अबके दोनों मिलकर सब तीर्थोंमें घूम आये। सावित्री, गायत्री, पुष्कर, भास्कर, कामाख्या, चन्द्रनाथ, हरद्वार आदि बड़े बड़े कष्टसाध्य तीर्थ भी अबकी बार कर डाले गये। इन सब तीर्थोंमें मौसी कभी न गई थीं, इस लिए निश्चय कर लिया गया था कि जब घरसे बाहर ही हुए हैं तब इन सबोंको देखते ही चलें।

यावज्जीवन घरकी अँधेरी कोठरीमें रहनेवाले विश्वेश्वरको तो ऐसा मालूम होता था कि मेरा नया जन्म हुआ है। आज यहाँ, कल वहाँ, कहीं स्नान, कहीं दर्शन और कहीं पर्वतारोहणका आनन्द लेते हुए वे अपने आपको बिलकुल ही भूल गये थे। चन्द्रनाथ तीर्थ पहुँचनेपर एक दिन विश्वेश्वरने कहा, "मौसी! अब कहीं आनेजानेका काम नहीं है। बस यहीं एक घर बनवाकर रहना चाहिए।" मौसीको हँसी आ गई। समस्त पश्चिमी शहरोंमें भ्रमण कर उन्हें जितना सुख हुआ उतना ही दुःख। उस बार सारे पश्चिमको दुर्भिक्षकी कराल मूर्ति ग्रास किये हुए थी। एक दिन उन्होंने मौसीसे कहा, "मौसी! यदि अपना देश छोड़कर यहीं रहनेका प्रबन्ध किया जाय तो कैसा हो?"

मौसीने पूछा, "क्यों?"

"देखो तो सही, कैसा गरीब देश है। किस तरह लोग 'हा अन्न! हा अन्न! करते हुए इधर उधर मारे फिरते हैं। यहाँ तो ढूँढ़ना नहीं

पड़ेगा कि किसको किस चीजकी कमी है और किसकी क्या भलाई की जाय। दरिद्रता किसे कहते हैं सो अकालके दिनोंमें पश्चिममें आनेपर ही अच्छी तरह मालूम होता है।"

मलिन और उदासी-भरी हँसी हँसकर मौसीने कहा, "पागल कहींका, क्या हमारे यहाँ गरीबोंकी कमी है?"

"कहाँ हैं? जो हैं भी उनकी तुलना इनके संग नहीं हो सकती। हम लोगोंका देश सुजला, सुफला, शस्यश्यामला भूमिवाला है। कुछ न हो तो भी वहाँ कोई भूखों नहीं मर सकता।"

"सो तो ठीक है, पर एक बार अपने ही गाँवके रामशंकर भट्टाचार्यके घरकी तकलीफ तो याद कर।"

"सो तो है। लेकिन अगर वे लोग इन सब जगहोंमें होते तो अब तक मर गये होते। वही देश है कि वे अबतक इज्जतके साथ जी रहे हैं। देखो मौसी, जिस देशमें अन्नका अभाव नहीं है, वहाँ कोई किसीका कुछ उपकार नहीं कर सकता। करते हुए भी लज्जा मालूम होती है। जिनको कुछ दिया जाय वे भी लज्जित होते हैं। क्यों कि वे तो किसी न किसी तरह दुःख-सुखसे अपना दिन काट ही लेते हैं। सबके आगे एकाएक हाथ पसारते नहीं बन पड़ता। जिस देशमें शाल-संकोच नहीं है, सहायताके अभावमें जहाँके लोग दिनरात मरते रहते हैं, उसी देशमें आकर रहना चाहिए। ऐसी जगह अनायास ही बहुत कुछ काम किया जा सकता है।"

मौसीने हँस कर कहा, "कौन कौनसा काम किया जा सकता है? जरा सुनूँ तो सही कि तू क्या करना चाहता है।"

विश्वेश्वरने सिर नीचा कर लिया। लज्जाके मारे उनका मुख गालसे लेकर कानकी जड़तक लाल हो गया। मुँहसे लम्बी चौड़ी बातें करना

उन्हें नहीं आता। भावोंकी अधिकतासे जब उनका हृदय एक बारगी आन्दोलित हो उठता है तब वे एकदम चुप हो रहते हैं। इसीलिए जब वे अपने यहाँ एक अतिथिशाला बनवा रहे थे, तब उसका काम उन्हें रोक देना पड़ा था। उन्होंने सोचा था कि आप-ही-आप कैसे लोगोंसे कहूँगा कि आओ भाई, मैं बड़ा मालदार आदमी हूँ; जिसे जिस चीजकी जरूरत हो मुझसे माँगो, मैं सबका दुःख दूर करूँगा। यह बात सोचनेमें भी उनकी अन्तरात्मा सकुचाती थी। भावकी उत्तेजनासे उन्होंने कार्य आरम्भ कराया था, परन्तु फिर एकाएक बन्द कर दिया। लोगोंने सोचा कि रेशमकी दर गिर जानेसे ही अतिथिशाला बनवानेका काम रोक दिया गया है! दूसरी बात विश्वेश्वरने यह सोची कि इस देशमें ऐसे लोगोंकी कमी है जो निस्संकोच भावसे अपनेको सबके सामने भिखारी कहें और चाहे जिसकी दी हुई सहायता स्वीकार करें। अवश्य ही वेषधारी वैष्णवोंमें यह संकोच नहीं है। वे भिक्षा लेनेमें आनाकानी नहीं करते; परन्तु यहाँके धर्म्मशील गृहस्थोंकी उदारतासे उन्हें भी किसी बातकी कमी नहीं रहती—उन्हें खूब खानेको मिलता है। इन सब बातोंको सोच समझकर उन्होंने अपनी वह इच्छा त्याग दी।

पश्चिममें आकर वहाँके साधारण देशवासियोंकी दुर्दशा देखकर वे अपने आँसू नहीं रोक सके। उनकी बड़ी इच्छा हुई कि पश्चिममें ही आकर रहें और अपनी चिरकालकी इच्छा पूर्ण करें। लेकिन जी छोटा करनेवाली हँसी हँसकर उनकी मौसी उनकी इस इच्छामें बाधा देने लगीं। अपनी गम्भीर बुद्धिसे वे समझ गई थीं कि कुबेरका भाण्डार पाये बिना इस देशका अभाव दूर होनेका नहीं। विश्वेश्वरको जी-भर दान करनेमें तो उन्होंने बाधा नहीं दी, पर वे बार बार घर लौट चलनेके लिए दिक करने लगीं। उन्होंने सोचा कि लड़केका

दिमाग चंचल है। अगर अधिक दिनतक इस देशमें रहेगा तो और भी पागल हो जायगा और सब कुछ लुटापटाकर उसका कंगाल बन जाना उन्हें बिलकुल ही पसन्द न था।

मौसीकी व्यग्रतासे लाचार हो विश्वेश्वरको घर लौटनेका उद्योग करना पड़ा। इधर मौसी भात बनाकर बैठी हैं—दिनके दो तीन बज गये हैं। रूखे बाल, थकी हुई पसीना भरी देह और सूर्यकी किरणोंसे झुलसे हुए मुँहके साथ विश्वेश्वर डेरे पर लौटे। शरबत पिलाकर और पंखा झलकर मौसीने किसी तरह उनको शान्त किया। वे अच्छी तरह समझ गई थीं कि क्यों उनके आनेमें इतनी देरी हुई है।

पचीस आदमियोंको खिलानेके लिए रसोई बनानेको जब विश्वेश्वर अपनी मौसीसे कहते तो वे अपनी बुद्धिसे सौ आदमियोंका भोजन तैयार करतीं। विश्वेश्वर भी आकर उनके काममें मदद करते। बड़े बड़े भातके हण्डे चढ़ाकर कमरमें गमछा लपेटे हुए विश्वेश्वर इधरसे उधर दौड़े फिरते। मौसी तरकारी बनातीं। 'अन्ततो गत्वा' सौकी जगह दो सौ आदमी आ जाते और खानेके लिए मारपीट करने लगते। तब भाण्डारसे चावल दे-दिवाकर भिक्षुकोंको शान्त करना पड़ता।

बहुत ज्यादा परिश्रम करनेके कारण विश्वेश्वर बहुत दुबले पतले हो गये और उनकी देहका रंग उड़ गया। दो एक दफे उन्हें ज्वर भी आ गया। तब मौसी जबर्दस्ती एक दिन गठरी-पोटरी बाँध-बूँधकर गाड़ीपर सवार हो गई। पूरे एक वर्षके बाद ये लोग देशको लौटे मौसीने विश्वेश्वरको रेलहीमें चिताया, "याद रखना, घर पहुँचनेके एक महीने बाद ही तेरा ब्याह कर दूँगी।"

सच पूछो तो विश्वेश्वर ब्याहका नाम सुनकर डर जाते थे। पहले क्या सोचकर उन्होंने ब्याह नहीं करनेका संकल्प किया था सो तो कहना

कठिन है; लेकिन इस समय वह संकल्प बड़े भारी अश्वत्थ (वट) वृक्षकी तरह अपनी शाखा प्रशाखाओंको फैलाकर बहुत मजबूत हो बैठा है। इतना मजबूत कि आँधी तूफानमें भी हिल-डोल नहीं सके। सामान्य कल्पनाका अंकुर इस समय सुदृढ़ पाषाणभेदी मूलमें परिणत हो गया है। पहले जो वे विवाह करनेसे इन्कार करते थे उसका कारण निरन्तरकी ग्रन्थचर्चा थी। अगर उनकी माँ, बहन या कोई प्रेमी नेही नातेदार उस समय उनके पास होता तो यह भाव उनके मनमें जमने नहीं पाता। मौसी उनके घर नई ही आई थीं, इस लिए केवल अपने कर्त्तव्योंका ही पालन करती थीं। दूसरेके लड़केको हदसे ज्यादा अपनाना उन्हें पसन्द न था। लेकिन इस वृद्धवयसमें उनका वह गुमान चूर हो गया है।

अब विश्वेश्वरको स्त्रीके नामसे छींक आती है। ज्ञान-चर्चाके समय जब वे काव्यसाहित्यकी आलोचना करते हैं तब हर जगह नारी-जातिकी प्रधानता देख कर डरके मारे काँप जाते हैं। एक सामान्य बालिका या स्त्री किस प्रकार पुरुषके विशाल जीवनके सारे सुखोंका केन्द्रस्वरूप हो जाती है, यह बात उनकी समझमें नहीं आती। लेकिन वे देखते हैं कि नारी ही काव्यसाहित्यका प्राण है--अतएव जगतकी भी प्राण है। कैसे इस मोहमयी आत्मविस्मृतिसे अपनी रक्षा करूँ, इसी चेष्टामें वे अपने प्राण मनको लगाये रहते हैं। अपनेको विवाहित समझकर वे कभी कभी मानसिक नेत्रोंसे अपनी उस विवाहित अवस्थाकी भी कल्पना कर देखा करते हैं। तब देखते हैं कि समस्त सुखकल्पना एक बालिकाके सुख दुःखमें समाप्त होती है। सारी चिन्ताओंका अन्त सारे कार्योंका अन्त उसी—एक उसी बालिकामें—हो जाता है! समस्त आग्रह, समस्त स्नेह, सौन्दर्य, प्रीति—जो कुछ है सब--उसी क्षुद्र मूर्तिमें पर्यव-

सित हो जाती है! क्या इसी जीवनके लिए आदमी इतना लालायित रहता है? यदि इसे ही सुख, शान्ति और तृप्ति कहते हों, तो फिर दासत्व किसे कहेंगे?

जिस समय ये लोग गाँवके पास पहुँचे उस समय साँझ हो गई थी। दूरसे ही ग्रामकी हरी-भरी रेखा मलिन चन्द्रकिरणमें चित्रकी भाँति शोभा दे रही थी। मैदानकी चिरपरिचित हवा मानों बड़े प्यारके साथ उनके बालोंको सुहराने लगी और ठोड़ी पकड़कर कुशलक्षेम पूछने लगी। सहसा विश्वेश्वरकी आँखोंसे आँसू टपक पड़े। उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ, मानों उनकी लड़कपनकी बिछुड़ी हुई माता ग्रामके आम्रवृक्षोंकी छायामें खड़ी होकर स्नेहसजल नयनोंसे विदेशसे लौटे हुए प्यारे पुत्रको प्यारसे बुला रही है। उस तीव्र आनन्दके प्रतिघातको रोकनेके लिए विश्वेश्वर थोड़ी देरके लिए खड़े हो गये। सहसा उन्होंने पृथ्वीपर मस्तकको लगाकर न जाने किसको प्रणाम किया। अच्छा हुआ जो उस समय उसकी मौसी बैलगाड़ीपर पर्देके अन्दर बैठी थीं, नहीं तो लड़केकी यह कार्रवाई देखकर वे रोने लगतीं! मौसीने घर पहुँचकर सबसे पहिले गौओंको देखा। पुराने नौकर तपसी और रामधनकी माँने तमाम घर-दरवाजे खूब साफ कर रक्खे थे। तो भी जिन घरोंमें ताले लगे हुए थे, उनकी हालत देखकर वे परदेश जानेके लिए बहुत पछताने लगीं। तीर्थोंसे जो वर्तन, वस्त्र और प्रसाद लाई थीं उन्हें पड़ौसियोंके घर भेजनेकी इच्छाको रोक वे भूखे प्यासे लड़केकी ब्याहका प्रबन्ध करने लगीं। इधर लड़का सारे गाँवका चक्कर लगा रहा था। किसीके घर जाना विश्वेश्वरके स्वभावके विरुद्ध था, पर आज उन्हें घर घर जानेकी इच्छा होती थी।

पीछे कहीं कोई कुछ बुरा भला न कहने लगे, इस लिए वे अपनी इच्छाको रोक सबसे पहले अपना केलेका बगीचा देखने गये। सूर्य्यदेव उस समय क्षीणतेज हो अस्ताचलको जा रहे थे। बागमें अँधेरा हो रहा

था। केलेके वृक्षोंको एकबार ललचाये लोचनोंसे देखकर वे लौट आये। गाँवका प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक गृह उन्हें न जाने कितना सुन्दर माळूम होता था। जब उनसे कोई गाँवका परिचित या अपरिचित भेंटता और पूछता, "बाबूजी, घर कब आये?" तब उन्हें बड़ा आनन्द होता और उससे कोई जान पहचान न होनेपर भी वे बातें करने लगते। आज इस ग्रामके सामान्यसे सामान्य मनुष्यकी संगति उन्हें बड़ी अच्छी माळूम होती थी।

दक्खिनकी ओर रामशंकरका मकान अन्धकारमें टीलेकी तरह माळूम होता है। देखते ही विश्वेश्वर खड़े हो गये। इच्छा हुई कि एक बार भट्टाचार्यजीको पुकारूँ। पर एकाएक वही विवाहवाली बात याद आ गई, इस लिए पुकारते न बना। सोचते विचारते वे आगे बढ़े। थोड़ी ही दूरीपर उमेश मुखोपाध्यायका मकान है। सायबानमें मुकर्जी महाशय बैठे हुए हैं और तमाखू मल रहे हैं। विश्वेश्वर चटपट वहीं जा पहुँचे।

मुकर्जी०—कौन है?

"मैं हूँ, विश्वेश्वर।"

"ओह हो! आओ भैया, बैठो, पच्छिमसे कब आये? अच्छे तो रहे न?"

इसी तरह बड़ी देरतक वहीं गपशप होती रही। सारे गाँवका समाचार पूछते पाछते विश्वेश्वर बड़ी रातको घर लौटे। थालीमें रसोई परोसकर और दूसरी थालीसे उसे ढाँककर मौसी ऊँघ रही थीं। कोई बात न कहकर विश्वेश्वर एकदमसे आसनहीपर जा बैठे। मौसी चौंक पड़ीं, बोलीं, "देख तो भात एकदम ठण्डा हो गया। दो दिनसे कुछ खाया नहीं। कहीं जाना हो तो खाकर जाना चाहिए। यहाँ आनेपर भी यही हालत रहेगी? कल बड़ा अच्छा दिन है, नदी नहाने जाना चाहिए, पर अब कब सोऊँगी और कब उठूँगी।—

तुझे यदि किसी जन्ममें भी—" मौसी और भी न जाने क्या क्या बकतीं; पर बेटेका उदास मुँह और झुका हुआ सिर देख चुप हो रहीं। आग्रहके साथ बोलीं, " इतने देर तक कहाँ था ?"

" उमेश मुकर्जीके यहाँ।"

" वे लोग अच्छे हैं न ? गाँवके और सब लोग अच्छी तरहसे हैं ? मुहल्ले टोलेका क्या समाचार है ?"

" एक बारगी सबके घरका हाल कैसे कहूँ ? हाँ, एक बात है। अपने रामशंकर भट्टाचार्य अब इस संसारमें नहीं रहे।"

मौसीके मनमें बड़ा दुःख हुआ, इसलिए वे चुप हो रहीं। एकबार मृदु स्वरसे बोलीं, " अहा ! बेचारी उनकी बहू—" इसके बाद बार बार केवल ' अहा ' ही उनके मुँहसे निकलता था, इस लिए चुप हो रहीं। फिर एक बार बोलीं, " जो मरता है वह तो सारे झंझटोंसे छुटकारा पाजाता है। अब बेचारा सब चिन्ताओंसे मुक्ति पा-गया !" विश्वेश्वर कुछ न बोले।

रातभर अन्नपूर्णाको नींद न आई। जाह्नवीकी वह शान्त सहिष्णु मूर्ति रातभर उनकी आँखोंके आगे नाचती रही। प्रातःकाल उठकर धोती और गमछा ले वे नदी नहाने गईं। नदीपर उस दिन बहुत भीड़ थी। मौसीको देखकर सब लोग कुशलक्षेम पूछ पूछकर उन्हें प्रसन्न करने लगे। रामशंकरकी भौजाई भी नहानेके लिए आई थीं। उन्होंने घनघनाती हुई आवाज़से कहा, " हम तो समझतीं थीं कि अब देश आओहीगी नहीं।"

" आती क्यों नहीं बहन ?" यह कहकर अन्नपूर्णाने अपने पास ही सफेद साड़ी पहने हुए खड़ी जाह्नवीको देखकर मुँह फेर लिया। दक्षिणकी ओर देखा—सावित्री डुबकी मार रही है। उनकी इच्छा हुई

कि उसका मलिन मुख लेकर प्यार करें और कुछ पूछें। लेकिन किस मुँहसे अब इन लोगोंके साथ वे बातचीत करें। जल्दी जल्दी स्नान करके लौटते समय उन्होंने सावित्रीकी बगलमें देखा कि एक युवती श्वेत वस्त्र पहिने और रूखे बाल बखेरे हुए खड़ी है। कौन है? क्या यह वही सती है? अन्नपूर्णा काठकी पुतलीकी तरह निश्चल, नीरव, खड़ी हो रहीं।

नवाँ परिच्छेद।



विश्वेश्वर अब फिर अपने अकेले कमरेमें पुस्तकोंके ढेरमें पड़े पड़े अपना मन बहलानेकी चेष्टा करने लगे। किन्तु इस बार उनकी इच्छा और मनका मेल नहीं मिला। पश्चिममें जाकर उन्होंने जिस तरहसे जीवनका आस्वाद पाया है, उसकी याद उनके जीसे आज भी किसी तरह नहीं भूलती। पुस्तकोंकी ढेरीके मारे काठके तख्ते बोझसे लदे हुए गधोंकी तरह माऌम होते हैं। पर इस कमरेमें जो एक लुभानेवाली शक्ति थी, वह अब न जाने कहाँ चली गई है। उन्होंने कोठीवालोंके यहाँ जाकर अपनी देख भालमें काम करानेकी चेष्टा की, पर उसमें भी जी नहीं लगा। गाँवके असामियोंको जो जमीन अध बँटेयामें दी गई थी, उन्होंने उसकी पैदावार आदिका पर्य्यवेक्षण करना चाहा, असामियोंको बुलाकर पूछताछ करनी भी आरम्भ की; पर दो ही दिनमें उससे जी घबरा उठा। लाचार, बिना काम धन्धेके विश्वेश्वर कभी नदी-तीर, कभी अमराई, कभी केलाबाग, कभी मैदान और कभी धानके खेतोंकी आरी-क्यारीमें मनमौजा पथिककी तरह घूमा करते। और नहीं तो कभी कभी मौसीहीके पास आ बैठते।

अन्नपूर्णादेवी भी आजकल न जानें किस मोहमें पड़ गई हैं। अब उनके मुँहपर न हँसी है और न अब वे उस तरह स्नेहके साथ बातें करती हैं। वे यह अच्छी तरह समझते थे कि मौसीके मनमें कौनसा कष्ट है, इसी लिए उनके पास आते हुए बहुत सकुचाते थे। एक दिन मौसीने साफ साफ कह दिया, "बस तू निश्चिन्त रह। जब इतनी बड़ी उम्र काट ली है तब ये बाकी दिन भी काट ही लूँगी। जब स्वयं तेरे जीमें आवे तभी ब्याह करना, अब मैं तुझसे कभी नहीं कहूँगी।"

विश्वेश्वर चुप हो रहे, किन्तु उन्होंने देखा कि आज कई रोजसे मैं मौसीसे जो बात कहना चाहता हूँ उसे कह डालनेका यही अच्छा अवसर है। उन्होंने सोचा मौसी और भी कुछ कहेंगीं, पर वे न बोलीं। वे चुपचाप पूजाके लिए रूई तूम तूम कर उसके बीज निकालने लगीं।

निदान अछता-पछताकर विश्वेश्वर बोले, "मौसी! उन लोगोंका कुछ हाल मिला है?"

रूईके बीज निकालनेका काम छोड़ अन्नपूर्णा विश्वेश्वरकी ओर देख बोलीं—"कौनसा हाल?"

"यही कि आजकल उन लोगोंका निर्वाह कैसे होता है?"

"मैं तो कुछ पगली नहीं हूँ कि जिनके साथ वैसा नाच व्यवहार किया, उनकी विपद देख हँसूँ और उनके घर जा उनकी हालत पूछ आया करूँ।"

उनका यह तिरस्कार सुना-अनसुना करके विश्वेश्वर बोले—"उनके घर न जाओ, औरोंके मुँहसे तो सुनती होओगी।"

"वे लोग कैसे आदमी हैं सो इतने दिन एक संग रह कर भी तूने नहीं जाना, पर मैं खूब जानती हूँ। वे सब मर जायँ तो मर जायँ, पर दूसरोंके आगे मददके लिए भिखारीकी तरह हाथ पसारने

और अपना पँवारा गानेवाले नहीं हैं। सुनती हूँ, आजकल हरि घर चेत गया है, वही बीच बीचमें आया करता है।"

विश्वेश्वरने दुःखित चित्तसे कहा, "हरि! वह तो बह गया—मिट्टीमें मिल गया। उस दिन मैंने देखा था कि वह और नरेन्द्र जमीनदार—वही जो डिप्टी साहबका दामाद है—दोनों बड़ी मौजमें घोड़ोंपर चढ़े गाँवसे होकर जा रहे थे। हरिका वह सजीला ठाठ गाँवभरके लोगोंकी नजरमें चढ़ गया है। छिः उसके किसी अंगमें लज्जा नहीं है!"

"सो मैं क्या जानूँ बेटा! उसका ठाट-बाट देखकर ही तो लोग कहते हैं कि अब उन लोगोंका दुःख दारिद्र दूर हो गया।"

"मौसी, तुम एकाध दिन उनके घर क्यों नहीं जा आतीं?"

अन्नपूर्णाने मनमें कुछ सोचकर झुँझलाहटके साथ कहा, "नहीं, सो तो मुझसे नहीं होनेका। मैं सतीकी माँको मुँह नहीं दिखा सकती। अगर तुझसे हो सके तो तू ही जाकर उनकी खोज-खबर ले आ।"

लेकिन विश्वेश्वर सहजहीमें कोई उपाय नहीं निकाल सके। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि वे लोग कष्टमें हैं लेकिन कैसे उनकी सहायता की जाय, यही उनकी समझमें नहीं आता था। काली लड़का है, उसके द्वारा कोई काम करनेसे भण्डाफोड़ हो जायगा। यह ठीक नहीं। बहुत कुछ सोच विचारकर विश्वेश्वरने स्थिर किया कि चाहे जैसे हो, सती और सावित्रीसे इस बारेमें बातें करनी होंगी और उनसे सहायता ग्रहण करनेको कहना होगा। यह संकल्प स्थिर करना तो सहज था, पर कार्य्यमें परिणत करना बड़ा कठिन हो गया। एक तो वे स्वयं ही बहुत बड़े संकोची हैं, दूसरे सती और सावित्रीसे भेंट होना भी आसान बात नहीं है।

एक तो गरीबकी लड़कियाँ, दूसरे भाग्यकी मारीं, इसीसे वे दोनों ही बाहर नहीं आतीं जातीं। कभी किसी दिन नदीतीरपर जल भरते समय सावित्री तो दिखलाई भी देती है, पर सती घरके पिछवाड़ेवाले कूँए या पोखरेको छोड़कर कहीं भी नहीं जाती। गँवँई-गाँवमें भले घरकी बहू-बेटियोंके बाहर आने-जानेमें कोई रोक-टोक नहीं होती, तथापि वे अपनी हीन अवस्थाके ही कारण कहीं नहीं निकलतीं। बालिका सावित्रीकी चर्चा भी इधर उधर होने लगी है। कोई कहती है "ओरी बहिनी! यह लड़की भी तो बड़ी जवान-सयानी हो गई! चौदह बरसकी बिटिया-अभी तक शादी नहीं हुई-अब कौन ब्याह करेगा?" जिसका कलेजा कुछ मुलायम होता वह कहती, "जैसी शादी इसकी बड़ी बहिनकी हुई वैसी होनेसे तो न होना ही अच्छा है। और नहीं तो कलेजेकी हूकसे तो बची है।" इसी तरह न्यायबुद्धिवाली कोई कोई समाजसंरक्षिणी सिहर उठती और कहती, "अरी! यह सब कुछ नहीं है। सब कर्मकी बात है। भाग्यमें जो लिखा है वह तो होवेहीगा। इस लिए क्या ब्याह रुका रहेगा? जात बिरादरीमें बनी रहें, इसकी भी तो फिक्र चाहिए!"

बाहर होते ही सावित्रीको ये ही सब ऊटपटाँग बातें सुननी पड़तीं। इसीसे वह बड़ी सावधानीसे चलती। जल लानेकी दरकार होती तो ऐसे समय घरसे बाहर निकलती जब कि गाँवभरके आदमी भोजन कर दोपहरी काटते रहते हैं। विश्वेश्वरने इस बातको एक दिन ताड़ लिया। उन्होंने सोचा, यही अवसर बड़ा अच्छा है। इसमें जो बुराई है वह उन्होंने न समझी हो सो बात नहीं है, पर क्या करते? इसके सिवा कोई उपाय ही नहीं है। लड़कपनसे ही उनका अद्भुत स्वभाव है। जबसे होश सँभाला तबसे किसीके घर कभी आते जाते नहीं, हरदम मुँह

चुराये गौ बने रहते हैं। किसीसे भर मुँह बोलते चालते भी नहीं, भलमन-साहतका जामा पहने रहते हैं, तब आज कैसे भट्टाचार्यजीके मकानपर जाह्नवी देवीके सामने चले जायँ! वे ही लोग उनके इस एकाएक बदले हुए ढँगको देखकर मनमें क्या कहेंगे? विशेषतः उन लोगोंसे सकुचानेका यथेष्ट कारण भी है, वह अपमान वे भूली थोड़े ही होंगी।

दो पहरके सन्नाटेमें विश्वेश्वर शीतला-स्थानके पास घूम रहे थे और अनमने होनेके कारण रह-रहकर पीपलकी लटकती हुई डालको खींचते थे। शीतका प्रथम सञ्चार प्रकृतिकी देहमें कंटकोद्गम कर रहा था। बखशी बाबुओंके बागकी बगलसे देखनेपर अगहनी धानके खेत भग-वती लक्ष्मीके सुनहले अञ्चलकी तरह शोभा दे रहे थे। नारियलके ऊँचे और सीधे पेड़ फलोंके भारसे झुक रहे थे। फलोंके लालचसे केलेके वृक्षोंपर पक्षी कोलाहल कर रहे थे। दक्षिणकी तरफ बँसवाड़ी गाँवके रास्तेपरही झुकी पड़ती थी। दोपहरकी उदासी मिली हुई हवा बाँसोंके रंध्रोंमें प्रवेश कर बीचबीचमें मीठे सुरसे करुणाभरी बंसी बजा रही थी। विश्वेश्वरने निहार कर देखा कि श्री-सौन्दर्य्य, आशा, और आनन्दके मारे वह स्थान चित्रकारकी स्वप्नच्छविकी भाँति शोभा दे रहा है। चारों ओर मानों विष्णु-प्रिया लक्ष्मीकी स्निग्ध दृष्टि है। केवल बड़ी दूरी पर एक रूखे केशोंवाली मलिनवसना दरिद्र बालिका बड़ासा घड़ा लिये उसके बोझसे झुकती हुई धीरे धीरे चली आ रही है। देखकर विश्वेश्वरकी आँखोंसे आँसू टपक पड़े।

बालिका निकट आ गई। विश्वेश्वर चुपचाप हक्केबक्केसे होकर खड़े हो रहे। उन्हें ऐसा साहस नहीं हुआ कि पुकारें,—बुलाना तो दूर रहा! उन्हें बहुत ही संकोच मालूम होने लगा। वे चाहते थे कि सावित्री उन्हें नहीं देख पाती तो अच्छा था। इस अवस्थामें उन्हें सामने देख

कर सावित्री लजायगी, यह सोचकर वे अपनी निर्बुद्धितापर लज्जित हो मरे जाते थे। लेकिन उनकी लज्जा भगवानने दूर नहीं की। बाईं तरफ पीपलतले जैसे ही दृष्टि पड़ी वैसे ही सावित्रीने विश्वेश्वरको देखा। लज्जिता, सकुंचिता, किंकर्त्तव्यविमूढ़ा होकर उसने सोचा कि खड़ी हो जाऊँ। फिर लाज छोड़ और भी नीचा सिर किये धीरे धीरे अग्रसर होने लगी।

विश्वेश्वरने अपना कर्त्तव्य स्थिर कर लिया। सोचा अगर संकोचको इस समय दूर नहीं करते, तो फिर ऐसा अवसर मिलना कठिन है। हिम्मत बाँधकर वे आगे बढ़कर बोले—"सावित्री!"

सावित्री चौंककर खड़ी हो गई, पर फिरी नहीं। विश्वेश्वरने फिर पुकारा—"जरा खड़ी रहो, तुमसे एक बात कहनी है। सुने जाओ।"

सावित्री खड़ी हो गई और मुँह फेर कर एक बार उनकी ओर देख आँखें नीची किये मृदुस्वरसे बोली, "क्या कहते हैं?" विश्वेश्वर और भी मुश्किलमें पड़े। क्या कहकर बात शुरू करें? थोड़ी देर ठहरकर सावित्रीकी ओर बढ़े और मृदु कण्ठसे बोले, "तुम्हारे भाई हरि आजकल घर आते हैं?"

"कभी कभी आते हैं।"

"आजकल वे कोई काम करते हैं?"

कौतूहलकी दृष्टिसे उनकी ओर देखती हुई सावित्रीने पूछा, "कैसा काम?"

"यही नौकरी चाकरी या कोई बनिज-व्यवसाय।"

"शायद करते हैं।"

"ठीक नहीं कह सकतीं?"

नीची नजर किये सावित्री बोली, "नहीं।"

बड़ी मुश्किलसे विश्वेश्वर और भी कोमल स्वरसे बोले, "घरका नोन तेल उन्हींकी कमाईसे चलता है न ?"

सावित्री चुप हो रही। विश्वेश्वर समझे कि वह असन्तुष्ट हो गई। तब उन्होंने संकोच छोड़ दिया और जल्दीसे कहा, "तुम कुछ दूसरा मत समझो। अपने मुहल्ले-टोले, गाँव-नगरके आदमियोंका हालचाल सब लोग जानना चाहते हैं, इसीसे पूछता हूँ। इसमें कुछ बुरा नहीं मानना चाहिए। क्या तुम मेरे पूछनेसे नाराज हो गई ?"

लाचार हो, मृदुकण्ठसे सावित्रीने कहा, "नहीं।"

"तुम्हारे भाई रुपये देते हैं ? रुपयोंके विना दुनियाका काम नहीं चलता, इसीसे पूछता हूँ।"

"हाँ, कभी कभी देते हैं।"

"उसीसे सब खर्च चला जाता है, कोई कष्ट तो नहीं होता ?"

सावित्री क्रमशः अधीर हो गई, बोली, "नहीं। अच्छा तो अब मैं चलती हूँ।"

"जरा और ठहर जाओ। तुम साफ साफ कुछ नहीं कहतीं। इतना संकोच क्यों करती हो ? मैं भी तुम लोगोंका भाई हूँ—मुझसे क्यों नहीं कहतीं ?"

अबके मुँह ऊपर उठाकर अपनी स्थिर और बड़ी बड़ी आँखोंसे उनकी ओर देखते हुए क्रोधभरे स्वरसे सावित्री बोली, "क्या आप अपने घरका हालचाल किसीसे कहते फिरते हैं ? इसीसे मुझसे भी पूछ रहे हैं ? आप क्या जानते नहीं कि ये सब बातें किसीसे कहनेकी नहीं होतीं ?"

विश्वेश्वर बहुत झेंपे, पर चुप नहीं हुए, बोले, "सबसे तो नहीं कहते फिरना चाहिए। पर यदि कोई पूछे तो उससे कहनेमें क्या हर्ज है ?"

"न हो; पर कहनेसे लाभ भी क्या है ? मैं अब जाती हूँ।"

" सुनो सावित्री , यद्यपि मैं पराया हूँ तो भी सच जानो, मैं तुम लोगोंको अपनी बहिन समझता हूँ । तुम लोगोंको लजवाने या तुम्हारी हँसी उड़ानेके लिए यह सब नहीं पूछता । अपने आदमी जिस तरह व्याकुल होकर पूछते हैं मैं भी उसी भावसे पूछता हूँ । यह क्या मैंने कोई अपराध किया ? सावित्री ! यद्यपि मैं पराया हूँ तथापि—। "

अबतक सावित्री मन-ही-मन कुढ़ रही थी और आश्चर्य्यमें पड़ी हुई थी । अबके विश्वेश्वरकी सहानुभूति-भरी बातें सुनकर वह कुढ़न उसके जीसे दूर हो गई । उसे मालूम हुआ कि विश्वेश्वरकी बड़ी बड़ी आँखोंमें आँसू भर आये हैं । लज्जित और दुःखित हो, सिर नीचा कर, क्षीण-कण्ठसे सावित्री बोली,—" क्षमा कीजिए । आपने पूछा कि हम लोगोंको कोई दुःख है कि नहीं, सो समझ लीजिए हम लोगोंको किसी तरहकी तकलीफ नहीं है । दिन तो पड़े नहीं रहते, कट ही जाते हैं । "

मन-ही-मन उदास हो ऊपरी हँसीके साथ विश्वेश्वर बोले, " सो तो जानता हूँ । दिन तो सभीके कटते हैं; किसीके सुखसे कटते हैं, किसीके दुःखसे । "

" हम दोनों बहिनें मिलकर बहुत काम करती हैं । माँसे अब काम नहीं होता । वे बीमार रहती हैं । भैया कुछ न कुछ दे ही जाते हैं । इसीसे काम चला जाता है । आजकल हम लोगोंको वैसी कोई तकलीफ नहीं है । "

विश्वेश्वरने समझा कि जन्मकी दुखिया लड़की है, इसीसे नहीं समझती कि दुःख किसे कहते हैं । कुछ आगे बढ़कर बोले—" तुम्हारे भाई जो रुपया पैसा देते हैं, सो तुम लोग लेती हो, पर अगर मैं तुम लोगोंको अपनी छोटी बहिन समझ कर कुछ दूँ या तुम्हारी माताकी पाँवपूजामें कुछ भेट करूँ, तो तुम लोग मुझे पराया समझ उसे लौटा तो न दोगी ?"

सावित्री और भी विस्मित हुई। क्षीणकण्ठसे बोली, "सो मैं नहीं कह सकती। माँ या जीजी जानें।"

"अच्छा तो यह कागज अपनी माँके पैरोंपर मेरी भेंट चढ़ा देना।"

यह कह कर विश्वेश्वरने निकट आकर सावित्रीके फटे आँचलमें न जाने कैसा एक कागजका टुकड़ा बाँध दिया। सावित्री उद्विग्न होकर बोली "नहीं, नहीं, मुझसे यह काम नहीं होगा। आपकी ऐसी ही इच्छा है तो माँको जाकर दे आइए। मुझे क्यों मुश्किलमें डालते हैं! मुझसे दिया नहीं जायगा। आप स्वयं जाकर जो कहना हो कहिए। कहिएगा कि—"

अपना काम साधकर विश्वेश्वर सरक कर अलग हो गये और बोले, "तुम दे तो दीजियो, पीछे जब वे मुझे बुलायँगी तब मैं जाकर जो कहना होगा कहूँगा। तुम मेरा नाम ले देना। अच्छा, अब घर जाओ; इतना बड़ा घड़ा लिये लिये बड़ा कष्ट होता होगा। अब विलम्ब मत करो, चली जाओ।"

बस इसना कह विश्वेश्वर हवा हो गये। वहाँके छूटे घर ही जाकर उन्होंने दम लिया।

दूसरे दिन सबेरे ही किसी कामसे मौसीके निकट आनेपर उन्होंने देखा कि सावित्री एक टोकरीमें फूल देनेके लिए लाई है। मौसी बड़े प्यारसे उससे बातें कर रही हैं। विश्वेश्वरको ऐसा मालूम हुआ मानों सावित्री उन्हींसे कुछ कहने आई है। लेकिन वह कौनसी बात है? शायद अपना कुछ दुखड़ा रोने आई होगी। इसके सिवा और कौन काम हो सकता है? आनन्दसे उत्फुल्ल होकर विश्वेश्वर अपने कमरेमें जाकर उसके आनेकी राह देखने लगे। कुछ ही क्षण बाद उन्होंने देखा कि थोड़ेसे हरसिंगार और कुन्दके फूल लेकर सावित्री उन्हींके कमरेकी तरफ़ आ रही है। उन्होंने समझा कि मुझे फूलोंसे बड़ा प्रेम है, इस लिए

रोज मौसी थोड़ेसे फूल मेरे कमरेमें रख जाया करती हैं। आज स्वयं न आकर उन्होंने सावित्रीके हाथों फूल भेजवा दिये हैं। मौसीका यह काम उनके मतलबहीका हो गया। द्वार तक आनेपर कमरेके भीतर आनेमें उसे इधर उधर करते देख, विश्वेश्वर मधुर कण्ठसे बोले, आओ, सावित्री!

सावित्री कमरेके भीतर चली आई और फूलोंको मेजपर पड़ी हुई एक किताबपर रखते हुए मीठे स्वरसे बोली, "आपकी मौसीने मुझे इन फूलोंको आपके कमरेमें रख आनेको भेजा है।"

"वहीं रख दो। तुम मौसीको फूल ही देने आई हो या और भी कुछ काम है?"

बालिकाके पीले पीले गाल लाल हो गये। वह सिर नवाकर मृदु कण्ठसे बोली, "हाँ, है। खाली खाली कैसे आती, इसलिए थोड़ेसे फूल ले आई हूँ।"

यह कह उसने अपने आँचलसे एक छोटासा कागज़ निकालकर फूलोंके पास रख दिया। विश्वेश्वर चौंक पड़े। आगे आकर बोले, "यह क्या सावित्री?"

"यह आपका वही नोट है। बहिनने कहा है कि हम लोगोंको रुपयेकी कोई जरूरत नहीं है। जो हम लोगोंसे भी अधिक गरीब हैं, यदि आप उन्हें देंगे तो वे बेचारे आपको बहुत बहुत आशीर्वाद देंगे। हम लोगोंको जरूरत नहीं है।"

विश्वेश्वर सकपकाकर खड़े हो रहे और कुछ काल तक एक अपराधीकी तरह चुपचाप रह दबी जबानसे बोले, "और तुम्हारी माँ, उन्होंने क्या कहा?"

"उनको सुनकर बड़ा कष्ट होगा, इसलिए बहिनने मुझे माँसे कहने ही नहीं दिया।"

"सुनकर कष्ट होगा? नहीं, कष्ट क्यों होने लगा; मैं उनसे स्वयं कहूँगा। वे अवश्य ले लेंगी।"

कोमल-स्वरसे सावित्री बोली, "आप ऐसा कभी न करें। जब बहिनने कह दिया है कि माँ नहीं लेंगी, तब वे निश्चय ही नहा ले सकतीं। माँ बहिनके कहे अनुसार ही चलती हैं। आप अगर वैसा करेंगे तो आपको और भी कष्ट होगा। आप इसे रख लीजिए। मैंने तो कह ही दिया था कि आजकल हम लोगोंको कोई अभाव नहीं है।" सावित्री चली गई। विश्वेश्वर मुग्ध होकर वहींके वहीं बैठे रह गये।

दसवाँ परिच्छेद।



बड़े और भले घरके गृहस्थ जब काल पाकर दरिद्र हो जाते हैं, तब कष्टके अतिरिक्त, अपने सम्मानके ख्यालसे पैदा हुए अभिमानके मारे और भी अधिक कष्ट पाते हैं। अवस्था अच्छी रहनेपर जो मनुष्य दूसरेका उपकार बिना संकोचके ग्रहण कर लेता है, वही उपकार अवस्था बिगड़ जानेपर उसके कलेजेमें तीरकी तरह चुभने लगता है। जिस बातमें बड़ी वेदना होती है उसपर आदमीका ध्यान भी बहुत रहता है। लोग इस बातको न समझकर इस भावको अहंकार कहते हैं। सचमुच यह अभिमान तो है, किन्तु यह अभिमान मनुष्यके ऊपर नहीं, भगवान्‌के ऊपर है।

जाड़ेकी रातकी मलिन छायाने धीरे धीरे दरिद्रके आँगनमें प्रवेश किया। लिपाई पुताईके बिना रसोईघर तो बिलकुल ही बेकाम हो गया है। मकानकी ईंटें जहाँ तहाँ निकल आई हैं, कहीं कहीं लोना लग गया है। सारी वस्तुएँ मूर्तिमती दरिद्रताका परिचय दे रही हैं। तो भी

आँगन साफ-सुथरा है। तुलसी-चौंतरा भी लिपा-पुता है। आँगनमें बोई हुई शाक-सब्जीके आलबाल भी खूब अच्छे बने हुए हैं। दरिद्रता राक्षसीको छिपानेकी हर सूरतसे कोशिश की गई है, यह बात देखनेवालेको अच्छी तरह मालूम हो जाती है।

काली बाहर खेलने चला गया है। कुछ कपड़ोंको केलेके पत्तोंकी राखसे साफकर, धो-धाकर सती बाँसपर टाँग रही है। ईंधनवाले घरसे कुछ सूखे कण्डे ले सावित्री तापनेके लिए आग सुलगा रही है; छोटासा आँगन धुएँसे भर उठा है। तुलसी-चौंतरेपर एक चिराग रख जाह्नवीने प्रणाम किया। उनका शरीर बहुत दुबला पतला हो गया है। चिन्ता-ज्वरसे वे बराबर जला करती हैं। कन्याएँ यह बात समझती हैं तो भी यह सोचकर कि माँकी तबीयत खराब होगई है, वे दवा दारूका प्रबन्ध करती रहती हैं।

काली दौड़ा दौड़ा आया और माँके गले लगकर बोला-"माँ, मिठाई?" वे उस समय भगवान्को प्रणाम कर रही थीं, उसे हाथसे झटका देकर बोलीं, "अपनी बहिनके पास जा।" सावित्रीने पुकारा, "अरे काली! इधर आ। जीजीने छेमीको मिठाई लाने भेजा है। वह आवे तब माँगियो!"

बहिनकी गोदमें बैठकर बालक बोला, "आज नहीं दोगी तो तुम्हें बड़ी मार मारूँगा—हाँ।" भाईकी देहकी धूल झाड़ते झाड़ते सावित्री बोली, "जरूर दूँगी। अच्छा यह तो कह, तूने कपड़ा क्यों नहीं पहना है?"

"कहीं फटे पुराने कपड़े भी आदमी पहनता है? विपिन हँसी उड़ाता है। मैं अब उन कपड़ोंको नहीं पहनूँगा।"

"यह देख, जीजीने सीं–सिला कर सब ठीक कर दिया है।"

उलट पुलट कर कपड़ेको देख जमीन पर पटक कर, बालक बोला, "यही ठीक कर दिया है? सिया हुआ कपड़ा मैं न पहनूँगा।"

"मेरा हीरा! देख तो जाड़ेके मारे तेरे हाथ पैर सर्द हो गये हैं। तुझे जाड़ा नहीं लगता? इस समय तो विपिन हँसी उड़ाने नहीं आता है—घरपर पहननेमें कौन देखता है?"

लेकिन बालकने यह सब समझाना बुझाना नहीं सुना। हाथ पैर छुड़ाकर भाग गया। सावित्री परेशान हो गई। उस समय जाह्नवीने धीर धीर आकर पुत्रको गोदमें ले आँचलसे छिपा लिया और वे उसे घरमें लिये चली गईं। आँखें पोंछकर सावित्री किसी दूसरे कामको चली गई—सती सूखते हुए वस्त्रोंके नीचे चुपचाप खड़ी हो रही।

छेमी एक कहारिन है। इन लोगोंको वह बहुत मानती है; जो ये कहती हैं सो करती है। इन लोगोंके काते हुए सूत, रस्सी और फूल फल लेकर वही बाजारमें जाकर बेचती है और उससे जो पैसे मिलते हैं, उनसे चावल दाल आदि जरूरी चीजें खरीद कर लाती है। वह आप भी दुखिया है, इसीसे इन लोगोंका दुःख भी उसने बाँट लिया है। इसी लिए इन लोगोंकी गरीबीकी बात प्रत्यक्ष रूपसे कोई जान नहीं सकता है।

माथेपर एक बड़ासा दौरा लिये छेमीने घरके भीतर आ पुकारा, "सती!" उसकी आवाज सुनते काली दौड़ता हुआ बाहर आ बोला, "जीजी, मिठाई!"

"लाई हूँ भैया, तुम्हारी मिठाई लाये बिना मैं कैसे रहती! यह लो।" यह कहकर उसने मिठाई बालकके हाथमें दे दी। बड़े आनन्दसे "माँ! यह देख—" कहता हुआ वह घरके भीतर चला गया।

सती आकर वहीं खड़ी हुई। माथेपरसे दौरा उतारकर छेमी बोली "मारे जाड़ेको तो मैं ठिठुर गई। अरे कुछ आग वाग है?"

"नहीं।"

"तब जाओ, चिराग ले आओ। सावित्री कहाँ है? ओरी सविया! चिराग ला री।"

सावित्री धीरे धीरे निकट आ बोली, "तेल लाई हो? दो तो चिराग जला लाती हूँ।"

"बेटी, मेरी बड़ी बुरी दशा है। मुझसे चला नहीं जाता, इसलिए रात हो गई। और हाट क्या यहाँ नजदीक है? तुम लोगोंकी अभी नई आँखें हैं, मुझे तो इसी वक्त अँधेरेके मारे सूझ नहीं पड़ता। अच्छा, लो बेटी, यह तेलकी शीशी। चार पैसेका तेल देखो तो कितनासा दिया है! यह राज्य क्या रहनेलायक है? जैसा चावल महँगा वैसा तेल महँगा, सब चीजोंकी एक ही हालत है। 'टके सेर भाजी टके सेर खाजा' हो रहा है।"

सतीने पूछा, "थालीका कितना दाम हुआ?"

छेमीकी आँखें भर आईं। वह बोली, "इसकी तो बात मत पूछो। बेटी, उतनी बड़ी थाली कोई एक रुपयेको भी नहीं लेना चाहता। खरीदते समय उसीके ३) रु० दिये गये थे। डाकू हैं सब डाकू!"

उसे धीरज देते हुए सतीने कहा, "पुरानी चीजका यही हाल होता है बुआ! अच्छा कितना मिला, सो तो कहो।"

मैं एक रुपएसे कम लेनेवाली थोड़े हूँ। आठ आने बबुआके कपड़ेमें लगे। बाकी आठ आनेमें चावल, दाल, नमक आदि लाई हूँ। सबका हिसाब कर लो न? पैसे ही न रहे कि थोड़ासा पाट (सन) खरीद लाऊँ। उस दफे भी रस्से बेचकर जो आठ आने पाये थे, उनसे चावल खरीद लिया था; पाट नहीं खरीद सकी थी। इस बार भी वैसा ही हुआ। हाँ, तो पाट और रूईकी खरीद अब कैसे होगी? गृहस्थीके सारे बर्तन-भाँडे क्या इसी तरह चले जायँगे?"

"बर्तन-भाँड़े अब हैं ही कहाँ ? जो दो एक हैं वे भी न रहेंगे तो काम ही चलना कठिन हो जायगा। नहीं जानती कि क्या होनेवाला है।"

सावित्रीने सब चीजें घरसे भीतर ले जाकर रख दीं। इसके बाद वह भीतरसे दो पके हुए केले लाई और छेमीके हाथमें देकर बोली, "बुआ! ये घरके केले हैं, खाकर देखो, कैसे हैं।"

छेमी खिसियाकर बोली, "रहने दे, अपनी बहिन और माँके लिए रहने दे। हाय! ब्राह्मणका घर दुनियाकी सारी चीजोंसे वञ्चित हो गया, इसलिए अब ये सब चीजें इनका आहार हो गई हैं! क्या किया जाय!"

"नहीं बुआ! तुम ले जाओ, और भी केले हैं।" सतीने भी बड़ा अनुरोध किया। लाचार छेमी कुछ न बोली और दोनों केले और ग्वालेके घरसे एक कण्डेपर थोड़ीसी आग ले चली गई।

दूसरे दिन सबेरे काली अपने किसी साथी लड़केके यहाँ खिचड़ी पकी देखकर घर आया और धूम मचाने लगा कि "मैं खिचड़ी ही खाऊँगा।"

सावित्री कातर कण्ठसे बोली, "माँ! दाल तो है नहीं।" सती बोली, "काली! हल्ला मत कर, मैं खिचड़ी पका देती हूँ।"

आहारके समय हलदीसे रँगा हुआ भात देख पहले तो लड़का धोखेमें आगया, पीछे जब समझ गया तब सब फेंक-फाँककर रोने और ऊधम मचाने लगा। यह देख सती वहाँसे चुपचाप एक ओर खिसक गई और जाह्नवी अपने स्वामीके सोनेकी जगहपर आँचलसे मुँह छिपाकर सो रही। केवल सावित्री अपने ऊधमी भाईको मनाने और फुसलानेमें लगी रही; पर उसने किसी तरह नहीं माना। बड़ी देरतक रो-धोकर अन्तमें वह सो गया। कहीं जागनेपर फिर न रोने लगे, इसलिए उसे किसीने उठाया

नहीं। इस बीचमें सती स्नान करके आगई। सावित्रीने आँगनमें उपजी हुई साग भाजी तोड़ताड़कर तरकारीका प्रबन्ध कर दिया। जेठानीजी 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' कहती हुई उठीं और गौको दस-बीस गालियाँ सुनाकर दूध दुह लाईं। सती बोली;–"सावित्री! देख तो आ, गुड़वाले बर्तनमें गुड़ है कि नहीं। अगर हो तो दूधमें थोड़ासा भात और गुड़ मिलाकर खीर जैसी बनाकर रख दे। काली बिनाखाये ही सोया है, खीर देखकर खुश हो जायगा।"

जेठानी चिल्लाकर बोली, "तुम सब खाली नवाबी करती हो! गरीबके लड़केका यह गुमान? खाना हो खाय, न खाना हो न खाय। भूख लगेगी तो आप ही जो दोगी खायेगा। गुड़ क्यों खर्च किये डालती हो?" जेठानीजीकी बातें सहनेकी उन्हें आदत थी, इससे वे विचलित नहीं हुईं। गुड़का बर्तन देख सावित्री बोली, "नहीं जीजी! गुड़ तो नहीं है।"

"रहे कैसे? तुम सबकी सब लक्ष्मी हो न? घरमें कोई चीज रह कैसे सकती है? बापरे बाप! ऐसा घर तो कहीं नहीं देखा!"

एक तो खानेपीनेका कष्ट और फिर उसके ऊपर वाक्यबाणोंकी वर्षा, खासा मणि-काञ्चनका संयोग हो गया! सती चुप हो रही और रसोई छोड़कर माँको पुकारने चली गई। यह देख जेठानीजी बकतीं झकतीं थोड़ासा गुड़ निकाल लाईं और बोलीं, "यह ले, लड़का भूखा रह जायगा, इस लिए 'नहीं' रहने पर भी नहीं कहते नहीं बन पड़ता। उस दिन मैंने कोरा जल पीकर यह थोड़ासा गुड़ बचा रक्खा था। राम राम! इस घरमें काहेको कोई कुछ खा पायगा!"

सतीने जाकर माँसे कहा, "माँ, उठ चल, कुछ खाले।" जाह्नवी धीरेसे बोली "मुझे आज ज्वरसा मालूम होता है। तुम सब खाओ पीओ, मैं आज नहीं खाऊँगी।"

माताकी देह छूकर सती बोली, "माँ! ऐसा ज्वर तो रोज ही होता है, खाये बिना कितना दिन बचोगी? जितना खाया जाय उतना ही खाइयो।"

"नहीं बेटी! मैं नहीं खाऊँगी।"

सती रुँधे कण्ठसे बोली, "इसके बाद तो कपालमें उपास लिखा ही है, फिर माँ, पहलेहीसे क्यों भूखों मरती हो!"

जाह्नवीको लाचार होकर खानेके लिए जाना पड़ा। यद्यपि वे कुछ देखती सुनती नहीं, तथापि भीतर ही भीतर सब खबर रखती हैं। वे समझ गई हैं कि इस तरहसे बहुत दिन तक चलना कठिन है। विषम चिन्ताके कारण ही उन्हें प्रतिदिन ज्वर आ जाता है।

घरमें जो कुछ थोड़ी बहुत खानेकी चीजें थीं वे दो ही दिनमें खर्च हो गईं। खानेवाले चार चार और कमाई कुछ नहीं। सबेरे उठते ही काली बोला, "माँ! भूख लगी है। खानेको दे।"

यह उठा तो माँ कहता हुआ; पर जाकर खड़ा हुआ अपनी बहिनके पास! सती चुपचाप बैठी रही; उसके हाथ पैर काठ हो रहे थे।

बालक बोला—"जीजी, उठ, क्या तू भात नहीं बनायगी?" सती नहीं उठी, यह देख बालक माँके पास नालिश करने गया। सतीने मृदु स्वरसे सावित्रीको लक्ष्य करके कहा—"देख तो सावित्री, घरमें थोड़ी बहुत रूई है कि नहीं?"

"नहीं जीजी!"

"तब तो आज तेरहों दण्ड एकादशी है। सावित्री! कालीको क्या खानेको दूँ? आज हाटका भी दिन नहीं है, नहीं तो छेमी बुआको लोटा बेच लानेके लिए देती। हाय अब मैं क्या करूँ!"

सावित्री मृदुस्वरसे बोली "इस तरहसे कै दिन चलेगा बहिन, इससे तो विशू भैयाका—" सहसा सती उठ खड़ी हुई और तीव्र कण्ठसे बोली, "छिः उसकी अपेक्षा भूखों भी मर जाना अच्छा है।"

सावित्री सिर नीचा करके रह गई। अन्तमें धीरेसे बोली "भूखों तुम हम मरेंगी, पर माँ और काली! इन्हें तो भीख माँग कर भी खिलाना चाहिए।"

"भीख? अभी नहीं, कुछ दिन बाद। जिस दिन घर द्वार छोड़ पेड़तले रहनेकी नौबत आ जायगी, उसी दिन आँचल पसार कर सबसे भीख माँगूँगी। तू लोटा तो ले आ, मैं जरा छेमीके घर जाती हूँ।"

सहसा सावित्री उच्च स्वरसे चिल्ला उठी—"जीजी! भैया आ गये—हरि भैया।"

हरिशंकर माँग काढ़े, हाथमें छड़ी लिये बड़े ठाटबाटसे आँगनमें आकर खड़ा हो गया। बोला "तुम सब क्या कर रही हो?"

"भैया! भैया!" कहकर सावित्री तो रोने लगी, पर सती काठ-पुतलीकी तरह ज्योंकी त्यों बैठी रही।

"क्या हुआ? रोती क्यों है? माँ अच्छी हैं न?" सावित्री रुँधे कण्ठसे बोली—"अच्छी हैं, लेकिन तुम उनकी फिकर कहाँ रखते हो! तुम्हारे कालीको आज खाना नहीं मिला है। माँको इतनी चिन्ता रहती है कि इस तरह वे बहुत दिनोंतक नहीं जी सकतीं। हम लोगोंकी दीन दशाको, भैया, तुम क्या एक बार भी कभी नहीं सोचते हो?"

"मैं क्या करूँ? बाबा पढ़ा लिखाकर मुझे पण्डित थोड़े ही बना गये हैं कि सबका पालन-पोषण करूँ? मैं अपनी बुद्धिसे काम करता और कमाता खाता हूँ। नहीं तो मेरी भी यही दशा होती। यह लो, दस रुपए मेरे पास हैं, दिये देता हूँ। मैं तुम्हारा वैसा भाई नहीं हूँ।"

रुपये हाथमें ले सावित्री मृदु कण्ठसे बोली, "भैया, मुझे माफ करो। मैं बड़ी दुष्ट हूँ। मेरा स्वभाव बहुत खराब हो गया है—" यह कहते कहते वह रोने लगी।

भाई बोला, "नहीं नहीं, रो मत। मैं चला, हो सका तो अगले महीनेमें भी आऊँगा। इस घरमें तो मुझसे खड़ा नहीं रहा जाता।"

"माँसे भेंट करके जाइयो।"

"भेंट करके क्या होगा? कह दीजियो कि मैं आया था।"

हरि चला गया। सावित्री बोली—"जीजी उठ। मैं छेमी बुआको बुला लाती हूँ। वह बाजारसे सौदा ला देगी।"

सती उठ खड़ी हुई। बोली, "अच्छा उठती हूँ। देख सावित्री अपनेकी अपेक्षा तो पराया ही अच्छा है; पर लाज परायेसे ही लगती है, अपनेसे नहीं।"

सती अब कुछ दिनोंके लिए निश्चिन्त हो गई। इन्हें कष्टकी परवा न थी—ऐसे वैसे कष्टको तो वे कुछ समझती ही न थीं; पर हाँ जब कभी उसका प्राणघातक रूप दिखाई देता था, तभी ये उसे (कष्टको) अनुभव करती थीं। जितनी मेहनत-मशक्कत हो सके वे करनेको तैयार रहती थीं और जो कुछ साग-भाजी मिल जाय उसे ही वे बड़ी प्रसन्नताके साथ स्वीकार करती थीं।

इस बार इन लोगोंने पाट और रूई कुछ अधिक परिमाणमें खरीद ली। मिले हुए रुपयोंका अधिकांश उन्होंने इसीमें लगा दिया—इसके सिवाय जिन चीजोंके बिना खाना पीना चलना कठिन था, केवल वे ही खरीदी गईं। कालीपदके फटे कुरतेकी बात उन्हें भूली नहीं थी, इस लिए एक कुरता भी उसके लिए खरीद लिया गया। दूसरे दिन बड़े सवेरे छेमी आई और सतीसे बोली—"आज बाबू लोगोंके घर साग

बेचने गई थी। उनकी लड़की कमला ससुरालसे आई है। उसने तुझे अवश्य अवश्य आनेके लिए कहा है; यह भी कहा है कि नहीं जाओगी तो उसे बड़ा दुःख होगा।"

सतीने देखा, कमला उसे अब भी नहीं भूली है। इससे उसे कुछ हँसी आगई; पर मालूम नहीं, यह हँसी दुःखकी थी या सुखकी। दो पहरमें जानेसे बहुत देर तक बैठना पड़ेगा और काममें भी हर्ज होगा, इस लिए सती अपनी माँसे बोली—"माँ, मैं कमलासे इसी समय जाकर मिल आना चाहती हूँ।"

माँने कहा, "अच्छा, जा—मिल आ।"

सतीको देखते ही कमला पहलेहीकी भाँति उसके गलेसे लपट गई और सहर्ष कण्ठसे बोली—"सती! प्यारी सखी! तू मुझे भूल तो नहीं गई? कभी कभी याद तो कर लेती है?"

सती उसकी ओर देख कर चौंक पड़ी। यह क्या वही कमला है? दो बरस पहले जिसके अंग सुख और सौभाग्यसे चमक रहे थे, वह आज ऐसी दुबली पतली और मलिन-मुखी हो रही है! यह तो वह कमला नहीं है। सतीने कहा, "कमला! तू ऐसी क्यों हो गई? बीमार थी क्या?"

"बीमार?" कमला हँसी। बोली, "मेरी बात छोड़ दे। तेरी दशाके आगे मेरी दशा कुछ गिनतीमें नहीं है। मैंने तो तेरा ब्याह भी नहीं देखा और अब तुझे इस दशामें देखती हूँ।"

"मेरी नई तो कोई दुर्दशा हुई नहीं! सखी, मैं तो जैसी पहले थी वैसी ही अब भी हूँ।"

"सो तो तू कह सकती है, क्योंकि मैं सुनती हूँ कि तूने उन्हें ब्याहके बाद फिर कभी देखा ही नहीं, और बहन, वह देखना तो न देखनेहीके बराबर है।"

बात काटकर सती बोली—" ये सब बातें छोड़ दे और तुझे क्या हो गया है सो कह। अब तेरे मुँहपर मैं वैसी हँसी नहीं देखती।"

" तू मेरी ही बात पूछती है और मैं तेरा मुँह देखती हूँ। सचमुच सती, तू जैसी पहले थी वैसी ही अब भी है; पर तेरा यह वेष देखकर मुझे आँखें बन्द कर लेनेकी इच्छा होती है। बहिन, किस पापसे तेरी यह दशा हुई?" सतीके गले लगकर कमलाने उसके आँचलमें अपना मुँह छिपा लिया। सती चुपचाप पत्थरकी मूर्तिकी तरह बैठी रही। थोड़ी देरके बाद कमलाने ऊपरको सिर उठाया। सती बोली—" इस पूसके महीनेमें उन्होंने तुझे कैसे आने दिया?"

" इधर दो बरससे मैं नहीं आई थी, देखनेके लिए मेरे प्राण व्याकुल हो रहे थे, इसीसे चली आई। इसके सिवाय मैं आऊँ चाहे जाऊँ, अब मेरे आने-जानेमें रोक-टोक करनेवाला ही कौन है?"

" क्यों? और तेरे स्वामी?"

कमला कुछ हँसने लगी। वह हँसी सतीको बहुत करुणाजनक मालूम हुई।

कमला हँसकर बोली, " स्वामी! मैं उनकी कौन हूँ जो वे मुझे रोकेंगे, मेरी खोज-पूछ करेंगे! बहिन, स्त्री तो फूलकी माला है। जहाँ बासी हुई, उतार कर फेंक दी। हम लोगोंका कै दिन आदर होता है?"

सती सिर नीचा किये बैठी रही। कमला कहती गई,—" बहिन, तू दुनियाका कुछ स्वाद नहीं जानती, सो यह एक तरहसे अच्छा ही है। पर सखी! यह जलन बड़ी भारी है। इस समय मेरी तेरी दशा प्रायः एकसी है। केवल दुःख भोगनेके ही लिए भगवान्‌ने स्त्रियोंको सिरजा है। सुख उनके लिए बनाया ही नहीं गया। मानों वे उसकी आशा भी नहीं रखतीं।"

सतीको याद आया कि एक दिन वह किसी कामसे बाहरके द्वारपर खड़ी होकर कालीपदको पुकार रही थी। इतनेमें नरेन्द्र जमीन्दार घोड़े-पर चढ़े हुए उधरहीसे निकले थे। उन्हें देख वह एक ओर हो गई थी, किन्तु नरेन्द्रने बड़ी बुरी निगाहसे उसकी तरफ देखा था जिससे उसके मनमें बड़ी घृणा हुई थी। आज वही बात उसे याद आई और उसने सोचा कि सचमुच कमलाका सुख सदाके लिए चला गया। कुछ देर और इधर उधरकी बातें हो चुकने पर सती बोली, "तो अब चलती हूँ, बहिन।"

"जरा और बैठ ले, फिर न जाने कब भेंट होगी।"

सती काँप उठी, बोली, "ऐसी मनहूस बात तू क्यों कहती है? तू जब आएगी तभी भेंट होगी।"

कमला हँस कर बोली, "मैं यह थोड़े ही कहती हूँ कि मैं मर जाऊँगी। मेरा ऐसा भाग्य कहाँ? अभी आकर देखती हूँ कि तेरे पिता नहीं रहे, तू विधवा हो गई और आगे आने पर न जाने क्या क्या देखना बदा है!" यह सुन सतीने उपेक्षासे हँस दिया। थोड़ी देर और बैठकर सती चली गई। वह कमलाकी बात सोचते सोचते चिन्तित चित्तसे जा रही थी। बाईं ओर बखशी बाबुओंका अहाता है, दाहिनी ओर बँसवाड़ी है, शीतकालकी तीक्ष्ण वायु वृक्षोंकी छायामें ही मानों डेरा डाले पड़ी है। सती अनमनीसी होकर सिर नवाये चली जा रही है। इसी समय सामने कोई ठिठक कर खड़ा हो गया और चौंककर बोला—"कौन है? सती?"

सतीने ऊपरको सिर उठाकर देखा, विश्वेश्वर हैं। संकुचित भावसे सिरका कपड़ा और नीचे सरका कर सती राह छोड़ एक ओर खड़ी हो गई, इसलिए कि विश्वेश्वर चले जायँ तो मैं भी जाऊँ। विश्वेश्वर

आगे तो बढ़े, पर रुक गये और धीरेसे एक बार खँखार कर कुछ इतस्ततः करके बोले, "सती, मैं तुम्हारा भाई लगता हूँ। अगर मैं तुमसे कुछ कहूँ तो कोई हर्ज तो नहीं है?"

उसने कुछ जवाब नहीं दिया। विरक्ति, लज्जा, भय और इसी प्रकारके अनेक भाव एक साथ ही उसके हृदयमें उथल-पुथल मचाने लगे। विश्वेश्वर फिर बोले, "बहिनके साथ बातचीत करनेमें तो कोई दोष नहीं है।"

सती बड़े कष्टसे जल्दीके साथ बोली, "क्या कहिएगा, जल्दी कहिए।"

विश्वेश्वर मृदुकण्ठसे बोले, "मैंने तुम्हारी माँकी सेवामें कुछ भेंट भेजी थी, तुमने उसे लौटा क्यों दिया?"

"जरूरत नहीं थी, इसीसे लौटा दिया।"

"जरूरत हो चाहे नहीं, पर सती, यदि कोई स्नेह या भक्तिसे कोई चीज किसीके पास भेजे तो उसे क्या लौटा देना चाहिए?"

सती तीव्र कण्ठसे बोली; "जो लेनेलायक हैं वे ले सकते हैं, क्यों कि उनके पास किसी प्रकारकी कमी नहीं रहती। और जहाँतक मैं जानती हूँ वैसे लोगोंके पास आप इस प्रकारकी भेंट भेजते भी नहीं होंगे। हम लोगोंको गरीब जानकर ही आपने सहायता भेजी थी। हम लोग गरीब हैं सही; पर जब तक अपने आप खर्च चला सकें, तब तक दूसरेकी दी हुई भीख क्यों लें?"

विश्वेश्वर बड़ी देरतक चुप रहे; फिर सतीको चली जाती देख रुँधे हुए गलेसे बोले, "मुझे माफ करो; मैंने तम लोगोंको भीख नहीं दी थी। विश्वास करो, मैं—मैंने केवल तुम लोगोंको स्नेह—"

बात काटकर सती बोली, " आप भी मुझे माफ करें। आप सरीखे दयालु मनुष्यको मैंने बड़ी कड़ी बातें कह दी हैं; लेकिन सोच देखिए, आपने अपना कर्त्तव्य किया है और मैंने अपना कर्त्तव्य किया है। भगवान् अभीतक हम लोगोंका काम किसी न किसी सूरतसे चलाये जाते हैं। जिस दिन देखूँगी कि अब किसी तरह काम नहीं चलता, उस दिन केवल आपहीके आगे क्यों सबके ही आगे हाथ पसारना पड़ेगा।"

" मुझे क्षमा करो सती, मैंने तुम लोगोंको अपनी बहिन समझ कर यह काम किया था।"

" सो तो मैं समझती हूँ।"

इसके बाद कुछ दूर और आगे बढ़कर सतीने विश्वेश्वरकी ओर देखा और कुछ तीक्ष्ण स्वरसे कहा—" मालूम होता है कि आप बीच बीचमें हम लोगोंकी गरीबीकी बात सोचते रहते हैं। लेकिन मैं आपसे कहती हूँ कि यह सब सोच-सोचकर आप अपना दिमाग खराब न करें। परसों भैया आये थे। मालूम होता है, वे कोई नौकरी करते हैं। आप आशीर्वाद दें कि वे आदमी हो जायँ, फिर हम लोगोंको कोई कष्ट न होगा।"

" मैं हृदयसे आशीर्वाद देता हूँ कि वह आदमी हो जाय और तुम लोगोंकी दशा सुधर जाय। मैं यह सुनकर सुखी हुआ कि पहलेसे उसकी मति-गति अच्छी हो गई है। सती, मैं सरलभावसे कहता हूँ कि पहले मैं तुम्हारे व्यवहारसे कुछ दुखी हुआ था, पर अब वह भाव नहीं रहा। अब तुम भी तो अपने मनमें कुछ मैल न रक्खोगी?"

" नहीं।"

ग्यारहवाँ परिच्छेद।



माघका महीना तो जाह्नवीने किसी तरह मरते जीते काट लिया, लेकिन फाल्गुन लगते ही उन्हें चारपाईकी शरण लेनी पड़ी। एक तो बीमार, दूसरे कड़ाकेका जाड़ा; वे सर्दी बर्दाश्त न कर सकीं। माताका ऐसा निर्जीव भाव देखकर सतीकी आँखोंके आगे अँधेरा छा गया।

दरिद्रके घरमें चिकित्सा क्या हो? तो भी सामर्थ्य भर चिकित्सा होने लगी। डाक्टरने फीस और दवाके दामका बिल भेजा। सतीने परिश्रम करके जो कुछ थोड़ी बहुत जमापूँजी एकट्ठी की थी वह सब इस बिलमें पूरी हो गई। अब फिर दारिद्र्य-राहुने आकर उस परिवारको ग्रस लिया। जाह्नवी बार बार अपनी लड़कियोंको मना करती थी— "अगर अच्छा होना होगा तो मैं यों ही अच्छी हो जाऊँगी, तुम सब इस अवस्थामें क्यों इतना खर्च करतीं हो?" समय समय पर वे अपने घरका हाल पूछती थीं और किसीको कोई कष्ट तो नहीं है यह जानना चाहती थीं। सती कह देती थी—"माँ! तुम इतना सोच मत करो। ऐसा करोगी तो रोग बढ़ेगा। जिस तरह आजतक दिन कटे हैं, वैसे ही आगे भी कट जायँगे। भैया जरा आये कि अभाव दूर हुआ। हाँ, दो एक दिन कुछ कष्ट होगा तो हम सब भोग लेंगी।" चिन्तित होकर जाह्नवीने कहा "तब हरिके पास खबर भेजो।"

"खबर भेजी है, दो दिनमें वे आ जायँगे।"

सतीने माँसे यह नहीं कहा कि जिस आदमीको उसने हरिके पास भेजा था उसे हरिने गाली देकर खदेड़ दिया है। वह दिनपर दिन

अधःपतित होता जाता है । तो भी उसने सोचा एक बार और भाईको बुलानेके लिए किसी आदमीको भेजूँगी । इस लिए फिर बहुत कुछ समझा बुझाकर उसने कालीको छेमी बुआके साथ चान्दपुर भेजा। कुछ ही घंटोंमें वे लोग लौट आये और बोले "हरि कलकत्ते गया है।"

सतीने चुपचाप आँखोंके आँसू पोंछ लिये ।

घरमें जो कुछ लोहा—लक्कड़ काँसा—पीतल था, सब एक एक करके छेमीके द्वारा बाजारमें बिकने लगा। बेच-बाँचकर जो आमदनी होती, उसीसे रोगीका पथ्य और घरका खर्च चलने लगा । तथापि इन लोगोंने न तो किसीसे भीख माँगी और न अपनी दुरवस्थाका हाल किसीके आगे कहा । अपनी गरीबीके संकोचसे वे किसीके घर नहीं जाती हैं और इसीसे और कोई भी इनके घर नहीं आता है। अतएव इनके घरका हाल बाहरका कोई नहीं जानता ।

जहाँ तक संभव था वहाँ तक सती बड़ी किफायतके साथ घरका खर्च चलाती थी। जब देखा कि आगे कालीको कष्ट होगा तब दोनों बहिनें आधा पेट खाकर रहने लगीं; लेकिन ऐसे भी बहुत दिनोंतक नहीं चला।

चैतका महीना उतर रहा है। रोगिनी पहलेसे अब बहुत कुछ अच्छी हो गई। घरकी ऐसी बुरी दशा होने पर भी सतीको मानों अँधेरेमें कुछ प्रकाश मिला । फिर उसने सोचा कि रोगसे छुटकारा पाने पर भी माताको अबके भूखों मरना पड़ेगा। दोनों हाथ जोड़ भगवानको गुहराते गुहराते ढलती रातके समय सती अपनी माँके बिछौनेके पास ही सो रही। बड़े सबेरे जाह्नवीने सतीको पुकारा—" सती ! सती ! उठ । " सती हड़बड़ाकर उठ बैठी और आँखें मलती हुई बोली—" क्या है माँ ? क्या हुआ ? "

"कुछ नहीं, बड़ा खराब सपना देखा है, इसीसे जी घबड़ा रहा है। जरा छातीपर हाथ तो फेर।"

सती माताकी छातीपर हाथ फेरने लगी। कन्याके सूखे हुए उदास चेहरेकी ओर देखकर जाह्नवी बोली—"बेटी! विपत्तिसे अधीर मत होना। 'सबै दिन नाहिं बराबर जात।' विपत्ति पड़नेपर भगवानको गुहराओ; वे ही विपत्तिसे उबारेंगे।"

सती क्षीणकण्ठसे बोली—"यह बात इस समय क्यों कहती हो माँ?"

"न जाने क्यों प्राणोंके भीतर एक अजीब तरहकी हलचल मच रही है।"

सावित्रीकी नींद खुल गई। वह कुछ देरतक माँके पैरोंके निकट बैठकर घरका काम करनेके लिए चली गई। जाग कर उठने पर काली पहले तो खेलने गया, परन्तु फिर थोड़ी ही देरमें आकर बोला—"बहिन! क्या खाऊँ? भूख लगी है।"

कलके खर्चेमेंसे थोड़ेसे चावल बचे थे—सतीने उन्हें अपनी तबीयत अच्छी न होनेका बहाना करके भाईके लिए रख छोड़ा था। उन्हीं चावलोंको भून कर और उनमें थोड़ासा नमक मिलाकर उसने भाईको दे दिया। उन्हें काली छोटीसी डालीमें रख खाते खाते बाहर चला गया। सतीने मातासे पूछा—"माँ तुम्हें भूख लगी है?"

"नहीं।"

"नहीं क्यों? जरूर लगी है। उठो, मुँह हाथ धोकर कपड़ा बदलकर कुछ खालो।"

जाह्नवीने एक बार कन्याके मुँहकी ओर देखकर कोमल स्वरसे कहा-"बेटी! मैं तो किसी न किसी तरह जीऊँगी ही, ये कठिन प्राण सह-

जमें निकलनेके नहीं, लेकिन मेरे सामने काली और तुम भूखों मत मरना। मैं बिना खाये हुए भी जी सकती हूँ।"

माँकी बात सुनी अनसुनी करके सतीने उन्हें हाथ मुँह धुला कपड़े बदलवा, पूजा करनेके लिए बैठा दिया। जेठानीजी गाय दुह कर बक-झक करती हुई नहाने गईं। सतीने पहले सोचा था कि आज घरके बाहर न जाऊँगी; लेकिन माताके लिए उसे वैसा करना पड़ा। उसने विचार किया कि जबतक दूध है तबतक माँ भूखों नहीं मर सकतीं और सावित्रीसे कहा, "सावित्री! तू आग जला, मैं जरा नहा आऊँ।"

मुलायम स्वरसे सावित्रीने कहा—"आगका क्या करोगी?"

"दूध गरम करूँगी" यह कहकर सतीने एक घड़ा उठाया और खिड़कीका द्वार खोलकर नहानेको जानेका विचार किया। दरवाजा खोलते ही उसने देखा कोई एक मुड़ा हुआ कागज रस्सीमें बाँधकर दर-वाजेमें लटका गया है। यह कैसा कागज है? यह तो चिट्ठीसी नहीं मालूम होती। सतीने कौतूहलवश उसे उठा लिया और देखा कि चिट्ठी ही है। अक्षर पहचाने हुए नहीं थे। पर ऊपर उसीका नाम लिखा था।

अब तो उसका विस्मय सीमासे बाहर हो गया। तो भी माता भूखी प्यासी हैं, यह बात याद आते ही वह चिट्ठीको ईंटोंकी सन्धिमें खोंसकर चली गई। घर लौटकर उसने भीगे कपड़े पहने हुए ही दूध गरम किया और आधा सा माताको पिला दिया। जाह्नवीने बड़ी आपत्ति की, पर कन्याकी आँखोंमें आँसू देखकर उसे लाचार हो पीना ही पड़ा।

सती भीगे ही कपड़ोंके साथ घाटकी ओर गई। पहले दिनके लंघ-नसे उसकी देह जल रही थी, इससे उसने अपने भीगे कपड़े नहीं उतारे। ईंटोंमें जो कागज खोंस दिया था उसे लेकर वह पढ़ने लगी। आरम्भहीमें सम्बोधन पढ़कर उसका सिर चकरा गया। अन्तमें बड़ी

चेष्टा करके उसने अपना होश सँभाला और उस चिट्ठीको आदिसे अन्त तक पढ़ डाला। चिट्ठीका लिखनेवाला उसकी सखी कमलाका स्वामी—नरेन्द्रनाथ जमीन्दार—था। उसमें बड़ी भ्रष्ट भाषामें भ्रष्ट बातें लिखी हुई थीं। इन लोगोंके दुःखमें गहरी सहानुभूति दिखलाते हुए उसने लिखा था कि अगर मेरी बात मान लोगी तो तुम लोगोंके सब दुःख दूर हो जायँगे। क्रोध, दुःख और घृणासे सतीने उस चिट्ठीको टुकड़े टुकड़े कर फेंक दिया और वह फिरसे दुबारा स्नान करने चली गई। जैसे कोई बड़ी अपवित्र वस्तु छू गई हो, वैसे अपनेको पत्रपाठसे अपवित्र मानकर उसने कई डुबकियाँ लगाईं। घर आने पर सावित्रीने पूछा—"बहिन! फिरसे नहाने गई थी? क्या कोई चीज पैरतले पड़ गई थी?"

"हाँ!" इसके बाद वह सावित्रीसे बोली—"मेरी तबीयत अच्छी नहीं मालूम होती, इस लिए मैं थोड़ी देर सोऊँगी।"

सावित्री मुँह उदास किये बोली—"जीजी! कालीको खानेके लिए क्या दूँगी?"

"दूध—थोड़ासा तू पी ले, थोड़ा उसे दे देना।"

कपड़े उतार, सूखा वस्त्र पहिन, एक घरमें जा, सतीने भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिये। सचमुच उसकी देहमें बड़ा दर्द हो रहा था, बड़ी तकलीफ मालूम होती थी, आँखोंपर भी थकावट छा रही थी, इस लिए लेटते ही नींद आ गई। नींद क्या आई, मानों थोड़ी देरके लिए उसने सारी झंझटोंसे छुटकारा पा लिया। जब उसकी नींद टूटी तब सुना कि भातके बदले दूध पाकर काली रूठ गया और दूध फेंककर रो रहा है, साथ ही साथ सावित्री भी रो रही है। सती कानोंमें उँगली डालकर पत्थरकी मूर्तिकी तरह पड़ी रह गई।

कुछ ही देर बाद किसीने उसके दरवाजेको खटखटाया और कहा—" जीजी उठ, बाहर आ। " सतीने उत्तर नहीं दिया। बाहरसे आवाज आती रही—" जीजी, उठो, आओ न। विशू भैयाकी मौसीने क्या भेजा है सो देखो। "

सतीने धीरेसे उठकर द्वार खोल दिया। देखा, एक मुटिया एक हाथमें पुष्पचन्दनशोभित जलपूर्ण घट और दूसरे हाथमें एक बड़ी भारी गठरी—जिसमें अन्न भरा हुआ था—लिये हुए पुकार रहा है। सतीने क्षीण स्वरसे पूछा—" यह सब क्या है ? "

" आज संक्रान्ति है। माँजीने अन्नदान किया है और ब्राह्मणोंके घर देनेके लिए भेजा है, इस लिए आया हूँ। "

मुटिया सब चीजें रखकर चला गया। सावित्री कालीको फल मूल देकर फुसलाने लगी और सती आवश्यक चीजोंको लेकर भोजन बनाने चली गई। उसकी आँखोंसे आँसुओंके कई बूँद झड़कर आगमें गिर पड़े; वे आगहीकी तरह तत्ते थे। नहीं कहा जा सकता कि वे आँसू भगवानके नाम पर गिराये गये या किसी आदमीके !

धीरे धीरे दो तीन दिन और कट गये। सतीको वहींपर फिर एक पत्र मिला। वह तरह तरहके लोभ-लालचोंसे भरा हुआ था। पहलेहीकी तरह उसे भी सतीने पढ़कर फेंक दिया। वह चुपचाप रह गई। उसने सावित्रीको भी इसका हाल नहीं कहा, इस लिए कि कहीं वह डर न जाय।

अबके वैशाखमें अन्नपूर्णादेवीने, मालूम होता है, व्रतोंका ठेका ही ले रक्खा है। पाँच सात दिन बीचमें देकर बराबर भोजन-सामग्री और जलभरी गगरी पहुँचने लगी। सतीने विचार किया कि दरिद्रता कस्तू-रीकी तरह है। कितना ही छिपाने पर भी उसकी गन्ध लोगोंको मिल ही

जाती है। सब कुछ समझ कर भी वह चुप हो रहीं; क्योंकि इस राक्षसीसे युद्ध करके वह बहुत हैरान हो गई थी अब और अधिक नहीं जूझ सकती थी। इन दिनों खाने-पीनेकी चिन्ता जब कुछ कम हुई, तब और और बातें सोचने लगी। पर जान पड़ता है कि उसके भाग्यमें भाग्यदेवताने मुहूर्त्त भरके लिए भी निश्चिन्त रहना नहीं लिखा था। सहसा एक दिन तारापुरकी कोठीके मुनीमने ३००) असल और उसके सूदका तकाजा भेजा। कहलवा भेजा कि यदि रुपया शीघ्र ही न चुकाया जायगा तो घर-द्वार नीलाम करा लिया जायगा।

उस दिन जाह्नवीसे शय्या छोड़कर उठा नहीं जाता था; परन्तु बिना उनके खाये कन्यायें कुछ खायँगी नहीं, यह जानकर वे उठीं और दो चार कौर खाकर सो रहीं। बुरी बुरी चिन्ताओंके मारे उन्हें जाड़ा देकर ज्वर चढ़ आया। सावित्री तो उदास मुँह किये हुए माताके निकट बैठी रही, पर सतीसे बैठा न गया—उसने एक टूटे से कमरेमें जाकर द्वार बन्द कर लिया। पर क्या सोनेके लिए?—

नहीं। वह सोच रही थी कि यह सब विडम्बना किसके लिए है? यह सर्वनाश तो सबोंके पेटके पीछे नहीं हुआ है। हुआ है, सिर्फ मेरे कारण। मेरी ही सुख-स्वच्छन्दताके लिए तो माता-पिता इस प्रकार आश्रयहीन हो गये। मुझे ही सुखी करनेके लिए तो वे इस फेरमें पड़े। अब इस विपत्तिमें हम लोगोंको कौन ढाढस बँधायगा? मैं किससे जाकर कहूँ कि हम दीन भिक्षुकोंका छः सौ रुपये देकर हमारा ऋण चुका दो। क्या ऐसा कोई दयालु धर्मात्मा है? अगर हो भी तो कौन ऐसी निर्लज्ज है जो उससे जाकर यह बात कहे! सती सोचने लगी कि कहनेका काम ही क्या है! जिसे सहायता देनी होगी वह स्वयं ही आकर सहायता दे जायगा। छिः! छिः!! धिक्कार है ऐसे जीवनको!

क्या केवल भिखमंगोंकी तरह किसीकी दयाके भरोसे ही इसकी रक्षा करनी पड़ेगी! क्या कोई और उपाय नहीं है!

सावित्रीने कहा, "जीजी! मेह आया। कपड़ोंको उतारकर भीतर रख दे, मैं माँके पास बैठी हूँ।"

सतीने द्वार खोलकर देखा, उसके ही हृदयका अनुकरण कर प्रकृति देवी भी मानों विपुल विप्लव मचाये हुए है। कपड़ोंको उतारते समय उसे याद आया कि घरमें पानी नहीं है और सारी रात आँधी-पानी बन्द होनेका कोई लक्षण नहीं दिखाई देता। कुँआ भी सफाईके बिना गँदला हो रहा है, पानी भी सूख गया है। इसलिए वह घड़ा लेकर पानी लाने चल दी। उसे घड़ा उठाते देख सावित्री बोली, "मालूम होता है पानी नहीं है। तो ला, घड़ा मुझे दे जीजी! मैं ले आती हूँ।"

"नहीं, तू माँके पास बैठ। मैं अभी आती हूँ।" सती पानीमें उतरकर और घड़ा डुबाकर ज्योंही उसे उठाने लगी त्योंही सहसा कुछ देखकर वह सिहर उठी। देखा—सामने ही तीरपर एक आदमी खड़ा है। यह कौन है? तीखी नजरसे देखकर उसने पहचाना, यह तो नरेन्द्र है।

भयसे उसने चिल्लाना चाहा, पर मुँहसे बोली नहीं निकली। वह जलमें खड़ी खड़ी चुपचाप काँपने लगी।

नरेन्द्र हँसकर बोला, "डरती क्यों हो? सुन्दरी, मैं कोई भालू या बाघ नहीं हूँ। दो दो पत्र मैंने तुम्हारे पास भेजे, पर तुमने एकका भी जवाब नहीं दिया। क्यों?"

सतीने साहस सञ्चय कर धीमी आवाजसे कहा, "भला चाहते हो तो अभी यहाँसे चले जाओ, नहीं तो मैं चिल्लाती हूँ।"

" नहीं—नहीं—यह क्या बेवकूफकी तरह बातें करती हो ! सुना था कि तुम बड़ी बुद्धिमती हो। हाथकी लक्ष्मीको पैरसे क्यों ठुकरा रही हो ! सारी विपत्तियोंसे छुट्टी पाकर तुम रानी बन कर रहोगी। सुना है कि कल तुम्हारा मकान कुर्क होनेवाला है। तब तुम सब कहाँ जाओगी ? मेरी बात मान लो, तो तुम्हारी माँ, बहन, भाई, किसीको कोई कष्ट न होने पायगा।"

सती पानीमें खड़ी खड़ी थर थर काँप रही थी। उसे ऐसा मालूम होता था, मानों साक्षात् यमराज नरेन्द्रके रूपमें उसके सामने खड़ा है ! पापीने फिर कहा, " बोलो, क्या कहती हो ? माँ, बहन, भाई सबको लेकर राह राह भीख माँगना अच्छा है—सबका भूखों मर जाना अच्छा है, या मेरी बातपर राजी होना अच्छा है ? "

सतीने दोनों हाथोंसे अपना मुँह ढँक लिया। नरेन्द्रने देखा कि उसकी दवा धीरे धीरे असर कर रही है। वह बड़े उत्साहसे फिर बोला, " मुझे हरिसे तुम लोगोंका सब हाल चाल मिलता रहता है। जिस दिनसे मैंने तुम्हें देखा है, उसी दिनसे तुम्हारा नाम मेरी जप-माला हो गया है। अवस्था अच्छी रहनेसे तुम लोग किसीका दिया कुछ नहीं लेती थीं, इसीसे अबतक कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ। अगर तुम मेरी होना कबूल कर लो, तो सच जानो तुम्हारे सारे कष्ट दूर हो जायँगे। इस विपत्तिमें पड़ी हो, बतलाओ न कितने रुपयोंकी आवश्यकता है ! मैं अभी देनेको तैय्यार हूँ।"

सती गिड़गिडा कर बोली, " तुम यहाँसे जाओ—जल्दी चले जाओ, नहीं तो मैं पानीमें डूब मरूँगी।"

" अच्छा तो अब मैं चलता हूँ। क्या कल फिर इसी वक्त आऊँ ? ऐं, बड़े जोरकी आँधी आया चाहती है। जाओ, घर चली जाओ।"

सती बोली, "पहले तुम चले जाओ, तब मैं पानीके बाहर निकलूँगी।"

"क्यों? मैं क्या साँप हूँ जो पास आनेसे डँस लूँगा? अच्छा, अब म चलता हूँ।"

पापिष्ठ हँसता हुआ चला गया। सती थर थर काँपती हुई पानीमें बैठ गई। उसे मालूम हुआ कि मानों मनुष्यका सर्वनाश करनेवाली कुप्रवृत्ति देह धारण करके उसे अपने कौशल-जालमें फँसाने आई है, क्या मजाल कि सती उसका निवारण कर सके। मानों उसके आगे-पीछे काले काले पिशाचोंका दल नाच रहा है। उनके मारे सती ठिठकी रही, उसे उँगली हिलानेकी भी हिम्मत नहीं हुई।

सहसा उसने पोखरेकी दाहिनी ओर देखा कि कोई दौड़ता हुआ जा रहा था, पर अचानक रुक गया। वह तीक्ष्ण दृष्टिसे सतीको सिरसे पैर तक निहार कर स्तंभित भावसे कुछ समय तक उधर ही देखता रहा और फिर जल्दी जल्दी डग बढ़ाता हुआ चला गया। सतीने पहचान लिया कि वह विश्वेश्वर है। उसने समझा कि विश्वेश्वरने नरेन्द्रको पोखरकी पारसे उतरते हुए अवश्य देख लिया है। उसके जीमें आया कि इसी वक्त इस पोखरेमें डूब मरूँ, कोई बचाने थोड़े ही आवेगा; किन्तु वह मनको बलपूर्वक रोककर दाँतोंसे ओठ काटती हुई घर चली आई। अब उसकी देहमें कँपकँपी नहीं है—उसका संकल्प पर्वतकी भाँति अचल है। उसे देख सावित्री उत्कण्ठित हो बोली, "जीजी! इतनी देरी क्यों हुई?"

"मैं घाट गई थी।"

"कपड़े भीगे हुए हैं। मालूम होता है कि तूने नहाया भी है।"

"हाँ।"

यह सुनकर जाह्नवीने दर्द-भरी आह खींची।

भोरको जाह्नवीने सावित्रीसे कहा, "आँधीसे सब आम गिर पड़े हैं। ये आम और बेलेके फूल विश्वेश्वरकी मौसीको तो दे आ, बेटी!"

आम देकर आने पर सावित्रीने कहा, "माँ! वे अक्षय तृतीयाको गंगास्नान करनेके लिए जायँगी। कहती थीं कि अगर तुम्हारी माँकी तबीयत ठीक हो, तो मैं तुम्हारी माँ अथवा बहिनको अपने संग ले जाऊँगी। माँ! वे मेरा बड़ा सत्कार करती हैं और बड़े प्यारसे बोलती हैं। मुझे तो बड़ी लाज लगती है।"

जाह्नवी चुप हो रहीं। सतीने भौहें सिकोड़ लीं।

बारहवाँ परिच्छेद।



बहुत दिनोंसे विश्वेश्वरने कोठीके साथ कारोबार करना बन्द कर दिया है। इसका कारण यही है कि उन लोगोंसे इनके विचार नहीं मिलते। कोठीका साझा छोड़ देने पर इन्होंने धान और गल्लेकी आढ़त कर ली है और बहुतसी जायदाद खरीद कर अपना कारोबार और भी बढ़ा लिया है। इसके सिवा उन्होंने फरास डाँगाकी ओरके कई अच्छे अच्छे जुलाहोंको बुलाकर अपने यहाँ बसाया है और अब वे उनसे कपड़े बुनवाने लगे हैं। ये जुलाहे बहुत अच्छा कपड़ा तैयार करते हैं। इनके बनाये हुए कपड़ोंकी कलकत्तेमें एक अच्छी दूकान खोल दी गई है, जो अच्छे मुनाफेसे चलती है। इन्हीं सब काम-काजोंमें वे बराबर लगे रहते हैं। रुपयेकी आमदनीके लिए ही यह सब काम फैलाया गया है, कारण बिना रुपयेके पश्चिममें जाकर लोकोपकारका कार्य्य कैसे किया जायगा!

गाँवमें भी अनेक लोग दरिद्र हैं। उन लोगोंकी चिन्ता विश्वेश्वरको न हो, सो नहीं। किन्तु गाँवके लोगोंका काम आप ही चला जाता है, और बिना माँगे कुछ सहायता देनेसे किस तरह लज्जित होना पड़ता है, यह बात सतीने उन्हें भली भाँति सिखला दी है। अतएव अब उनका गाँवके लोगोंकी ओर अधिक ध्यान नहीं जाता, वे अपने ही कारोबारमें और नई नई बातोंकी उधेड़ बुनमें लगे रहते हैं।

विश्वेश्वर मौसीको गंगास्नान कराके, पाँच दिनमें लौट आये। घर आते आते साँझ हो गई। उधर मौसी रसोईके काममें लग गई, इधर विश्वेश्वर अपनी आढ़त और कपड़े बुननेका कारखाना देखने चले गये। काम सब ठीक-ठिकानेसे चल रहा था, कहीं कुछ गड़बड़ नहीं थी। भोजन करते समय विश्वेश्वरने देखा कि आज मौसीका मुँह बड़ा उदास है; उसपर करुणाका भाव झलक रहा है। उन्होंने सोचा, आज किसी कारणसे इनका चित्त दुःखी हो गया है; पूछा, "क्या हुआ, मौसी?"

"कुछ तो नहीं, बेटा!" यह कह कर उन्होंने एक लम्बी साँस ले ली। लम्बी साँस लेना उनके लिए कोई नई बात नहीं थी, इस लिए विश्वेश्वर चुपचाप भोजन करने लगे। बड़ी देरतक चुप्पी साधे रह कर मौसीने आप-ही कहा—

"अहा! देखनेहीसे दुःख होता है।"

"किसे देखकर दुःख होता है, मौसी?"

"उन्हीं रामशंकरकी लड़कियोंको। अभी थोड़ी देर हुई सती मुझे प्रणाम करने आई थी।"

"सती? तुम्हें प्रणाम करने? क्यों?"

विश्वेश्वरने भौंहें तनिक टेढ़ी करके अपनी मौसीकी ओर देखा। अन्नपूर्णाने कहा, "आई तो हर्ज क्या हुआ? मैं गंगा नहाकर आई हूँ, इसी लिए उसकी माँने मुझे देखनेके लिए भेजा होगा।"

विश्वेश्वर और कुछ न बोले। अनमनेसे होकर भोजन करके सोनेके कमरेमें चले गये। न जानें कौनसी समस्याकी मीमांसा करनेमें उनका मन इधर उधर भटकने लगा।

अन्नपूर्णाने कहा, "चिरागमें तेल नहीं है। उसे उठाकर ला दे, तो तेल देकर जला दूँ।"

"मैं सोता हूँ, अब रोशनीकी जरूरत नहीं है।" यह कह कर विश्वेश्वर पड़े रहे। जिस कठिन तर्कमें लगे हुए थे उसे उन्होंने 'असंभव' समझकर चित्तसे दूर कर दिया और माथेके नीचे तकिया रखकर निद्राकी आराधनामें मन लगाया। सबेरे हाथ मुँह धोनेके बाद उन्होंने इसका निश्चय कर लिया कि पहले क्या करना चाहिए। फिर एकबार तृषित नेत्रोंसे उन पुस्तकोंके ढेरकी ओर देखा जिन्हें वे आजकाल छूते भी नहीं हैं। उसी समय उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक अँगरेजी दर्शनशास्त्रको किसीने संस्कृत साहित्यग्रन्थके ऊपर लाकर रख दिया है। "यह काम मेरे हाथका कदापि नहीं हो सकता। मौसी भी इस घरमें कभी नहीं आतीं। पुस्तककी ऊपरवाली जिल्द भी कुछ उठी हुई है। मालूम होता है, कोई चीज इसके भीतर छिपाई हुई है।" जिल्द खोलते ही उन्होंने देखा एक चिट्ठी रक्खी है और उसके ऊपरके अक्षरोंकी लिखावट स्त्रियों जैसी है:—

"पत्र पहुँचे विश्वेश्वर बाबूकी सेवामें।"

यह क्या? यह चिट्ठी किसने लिखी? विश्वेश्वरने जल्दी जल्दी लिफाफा खोला; कुछ सतरें पढ़ते ही उनका विस्मय बढ़ने लगा और नाना प्रकारकी भावनाओंसे चित्त चञ्चल हो उठा। कुछ प्रकृतिस्थ होते ही वे उसे शुरूसे पढ़ने लगे।

" अनेकानेक प्रणामके अनन्तर निवेदन है कि इस पत्रको पढ़ना आरम्भ करते ही आप विस्मयसागरमें डूबने उतराने लगेंगे और आपको जाननेकी इच्छा होगी कि यह किसने लिखा। इस लिए मैं आपको पहले ही बतलाये देती हूँ कि मेरा नाम ' सती ' है।

" यह सोचकर पत्र लिखने बैठी थी कि बहुतसी बातें लिखना है, पर अब समझमें ही नहीं आता कि क्या लिखूँ। लिखनेको तो बहुत बातें हैं, पर क्या लिखकर पत्रका आरम्भ करूँ ! कुछ लिखना चाहती हूँ और कुछ लिख जायगा, पहले इस डरसे घबड़ा रही थी, पर अब इस समय मुझे लाज हया किसकी है ? जो कुछ कलमसे लिख जाय, वही लिखे डालती हूँ। आगे–पीछेकी इबारत दुरुस्त करनेकी इस समय कौन फिक्र करे ! मैं आपको यह पत्र न लिखती, आज मुझे जो काम करना है, उसके लिए सफाईका एक गवाह रखनेकी मुझे कोई आवश्यकता न थी। अपनी निर्दोषता प्रमाणित करनेके लिए मैं किसीसे भी कुछ नहीं कहे जाती हूँ। आप मेरे सुख-दुःखके कोई ऐसे भागी भी नहीं कि आपसे यह बात कहे बिना काम ही नहीं चलता। संसारके सामने मैं दोषी और अपराधी ही होकर चली, लेकिन आपसे ये सब बातें कहे बिना मैं न जा सकी। क्यों ? इसका कारण मैं नहीं समझ सकी।

" पाँच दिन हुए जिस दिन बड़ी आँधी आई थी, उन दिन तीसरे पहर पिछवाड़ेवाले पोखरेपरकी बात आपको याद होगी। उस दिन आपने जिसे जाते हुए देखा था वह चाँदपुरका जमीन्दार नरेन्द्रनाथ था और पोखरेके जलमें जो स्त्री पैठी हुई थी वह मैं थी।

" यह आप समझ तो अवश्य गये थे; परन्तु जान पड़ता है आपने इसपर कुछ विचार नहीं किया होगा कि उस दिन वैसा योग-जोग कैसे जुड़ गया था। अथवा जिस तरह और लोग इस प्रकारका दृश्य

देखकर जैसा अर्थ निकाल लेते हैं वही आपने भी निकाल लिया होगा। परन्तु क्या आपने विचार कर देखा है कि एक भले घरकी लड़कीके लिए यह कार्य संभव है या नहीं!

"मैं यह पत्र अपनी निर्दोषिताका प्रमाण देनेके लिए नहीं लिख रही हूँ। मैं दोषी हूँ। सचमुच ही मैं उस पापीके प्रलोभनमें पड़ गई हूँ। अब मेरी शक्ति नहीं है कि मैं इस प्रलोभनसे अपनेको बचा सकूँ। लेकिन सुनिए, मैंने उसे छका दिया है—उसकी प्रतारणा की है। नहीं नहीं, यह प्रतारणा कैसे हुई? उसने जो चाहा था मैंने तो उसे उससे भी अधिक देनेका विचार किया है। उसने केवल देह चाही थी, पर मैंने उसे अपनी आत्माका दान कर दिया है। बहुत होता तो वह मेरा एक जन्म अपवित्र करता, नष्ट करता, पर मैंने उस मूर्तिमान् नरकके द्वारपालके पैरों पर अपना जन्म-जन्मान्तर, इहकाल-परकाल, स्वर्ग-मर्त्य सब कुछ दान कर दिया है। तब कैसे कहा जा सकता है कि मैंने उसकी प्रतारणा की?

"अब साफ साफ खोलकर कहती हूँ—वह मुझे बहुत रुपया देना चाहता था। तुमने जिस दिन उसे देखा था, उसके बाद परसों—जिस दिन चाँदपुर-कोठीके महाजनोंने आकर द्वारपर नोटिस लटका दिया कि तीन दिनमें घर छोड कर चले जाना होगा, उस दिन—दो पहरमें वह फिर आया। मेरे पैरोंपर उसने हजार रुपयेके नोट रख दिये और मैंने वे ले लिये। आज रातको वह घाटपर आकर मिलेगा और मैं उसके साथ भाग जाऊँगी, यही निश्चय हुआ है। सो मैं चली—आज जरूर ही चली जाऊँगी,—लेकिन उसके पास नहीं,—और ही एक पुरुषके पास।

" नहीं जानती वे संसारके मनुष्योंकी अपेक्षा सदय है कि निर्दय; नहीं जानती वे मुझे क्या दण्ड देंगे। जो हो, मैं उन्हींके हाथोंसे दण्ड सहूँगी, संसारके लोगोंके हाथोंसे नहीं। आज यदि पापिष्ठ नरेन्द्र मुझे इस प्रकार प्रलोभनमें न डालता, इस तरह नरकके द्वार तक घसीट कर न ले जाता, मैं जिस समय संसारके दुःखों और चोटोंसे ज्ञानशून्य हो रही थी, उस समय मुझे यदि वह यह अवसर न देता, तो क्या मुझे कभी मरनेका साहस होता?—नहीं, कभी नहीं।

" कल मेरे भाई, बहन, माँ—सब बिना घरद्वारके राहके भिखारी हो जाते; लोगोंके ताने-तुर्रे सहते, अथवा भूखों मर जाते,—भला यह दुःख मैं कैसे देखती? अपनी मोह-मायाके मारे मैं उन लोगोंको कैसे भूल जाती और इस लालचको कैसे रोकती? मेरी आत्मा चिरकाल तक कष्ट पाती रहेगी, क्या इसी तुच्छ डरसे मैं आत्महत्या करनेसे रुक जाऊँ? दुःख–कष्टको तो मैं अपना जन्मका साथी समझती हूँ। वह कष्ट क्या इससे भी अधिक होगा? अगर हो भी तो उससे मैं नहीं डर सकती। लोग मेरी निन्दा करेंगे—करें, इससे क्या? मेरे भाई, बहन, माँ, ये तो कलसे सुखी हो जायँगे। उनके कुछ दिन तो सुखसे कट जायँगे। और फिर इसके बाद संभव है कि भगवान् उन-पर प्रसन्न भी हो जायँ। यह मैंने अच्छी तरह समझ लिया है कि मैं भगवानकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके योग्य नहीं हूँ, इसीलिए निश्चिन्ततासे बहुत दिनोंके बाद इस थोड़ेसे सुखका अनुभव करके संसारसे बिदा होती हूँ। सीधी सादी सावित्रीको मैंने समझा दिया है कि यह रुपया मैंने कहीं पड़ा हुआ पाया है और इसके लेनेमें कोई दोष नहीं है। वह मेरी बातको अक्षर अक्षर सत्य मानती है, इसलिए वह ऐसा ही समझ गई है और सिरपर आई हुई विपत्तिसे छुटकारा पानेकी आ-

ज्ञासे उसके चेहरे पर हँसी छा गई है ! मैंने उसे बहुत दिनोंसे इतना प्रसन्न नहीं देखा । वह बेचारी नहीं जानती कि यह रुपया उसकी बहिनके कलेजेका खून है । ईश्वर करे, उसे अपनी बहिनके मरनेका शोक न हो ।

"तुम कहोगे कि इस एकाएक आई हुई विपत्तिकी खबर मुझे क्यों न दी ? यह बात तुम कह सकते हो, क्यों कि तुम बड़े दयालु हो । तुम कई बार हम अनाथोंपर दया करने आये हो और दया की भी है; पर अब और नहीं चाहिए । वही बहुत हुआ—इतना ही मेरे कलेजेमें तीरकी तरह चुभा हुआ है ! मैं और अधिक ऋणका भार नहीं बढ़ाना चाहती ।

"मैं बहुत बातें लिखना चाहती थी—लिखीं भी बहुतसी बातें—किन्तु अभी और भी कई बातें बाकी हैं । उन्हें लिखकर अपना वक्तव्य समाप्त करूँगी । तुम्हें याद होगा कि एक बार तुम रुपये देकर दया दिखलाने आये थे, लेकिन मैंने वे रुपये नहीं लिये थे । क्या सचमुच तुम समझते हो कि हम लोगोंको उस समय कोई जरूरत नहीं थी ? नहीं, सो बात नहीं है । किन्तु तुम हमारे कौन थे, जो तुम्हारी दया हम स्वीकार कर लेते ?

"तुम्हें तो याद ही होगा, अगर तुम चाहते तो मुझे सब कुछ दे सकते थे । पर सो नहीं करके तुम हम लोगोंकी गरीबी देख कर दया दिखाने आये ! फिर तुम्हारी उस दयाको हम लोग क्यों ग्रहण करें ? मैं आज अभिमानपूर्वक कहती हूँ—यही पहला और अन्तिम अवसर है जब कि मैंने यह बात अपने मुँहसे निकाली है—मैं तुम्हारी स्त्री होनेके सर्वथा अयोग्य नहीं थी । तो भी तुमने मुझे ग्रहण नहीं किया । यदि और किसीको ग्रहण कर लेते, तो मैं समझती कि तुममें स्नेहका

अभाव नहीं है, केवल योग्य पात्री न मिलनेसे तुमने ब्याह नहीं किया है। पर बात वैसी नहीं है। मैं ठीक समझती हूँ कि तुम स्त्री मात्रसे—स्त्री-जातिसे घृणा करते हो। इसी लिए आज मैं मरती बेर तुम्हें शाप दिये जाती हूँ कि इसी अधम स्त्रीजातिको, एक दिन आयगा, जब तुम प्यार करोगे। यह अधम जाति अपने हृदयके भीतर कितना बड़ा समुद्र छिपाये बैठी है, उसका मर्म तुम एक दिन समझोगे, जरूर समझोगे। उस दिन इस बातको स्वीकार करोगे कि संसारमें स्नेहके इस आदान-प्रदानमें ही सचमुच सबसे बढ़कर सुख भरा है।

" अच्छा, अब मैं इस पत्रमें भी विदा होती हूँ और इस जन्मके लिए भी बिदाई माँगती हूँ। क्यों कि शायद तुम मेरे ऊपर बहुत विरक्त होते होओगे और समझते होओगे कि मैं बहुत वाचाल हूँ।

" स्त्रियाँ जहाँतक सह सकती हैं वहाँतक सहन करनेमें मैंने कोई कसर नहीं रक्खी—पीछे पैर नहीं दिया। मैंने सारे दुःखोंको बिना मुख मलिन किये सिरपर ओढ़ लिया है। लेकिन देखती हूँ कि मेरे इस अभाग्यका कूल किनारा नहीं है, इस लिए अब इस जीवनव्रतका उद्यापन किये डालती हूँ। मरनेके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। भाग्यके फेरमें पड़कर मुझे उस घृणित प्रस्तावमें अपने मुँहतकसे सम्मति देनी पड़ी है। भले घरकी स्त्रियाँ जिस बातको सुनकर कानोंमें उँगली डाल लेती हैं, उस बातको मैं खड़ी खड़ी सुनती रही हूँ और अन्तमें मैंने यह चतुराई खेली है। सब ही कुछ किया—और क्या कहूँ! उस सम्मतिकी अपेक्षा तो आत्महत्याकी भयानक स्मृति भी मुझे बड़ी प्यारी मालूम पड़ती है। सब लोग मेरी निन्दा करेंगे—किया करें। लेकिन तुम मत करना। एक वार याद करना कि अगर तुम मुझे अपने चरणोंमें स्थान देते, तो आज मेरी यह दशा न होती—अपनेको बेच कर आज मुझे माँ, भाई और बहिनकी रक्षा न करनी पड़ती।

" यह कभी सोचना भी नहीं कि दूसरेकी पत्नी और विधवा होकर मैंने पर-पुरुषकी ओर चित्त चलाया। मैं हिन्दूकी लड़की हूँ। चाहे जितना कष्ट हो तो भी हम हिन्दू स्त्रियाँ अपनको दो ही चार दिनमें अपनी अवस्थाके अनुकूल बना लेती हैं। तुम्हारी मौसीकी बातसे मुझ सरला बालिकाके चित्तमें जो आशा जाग उठी थी, उसे कई महीनेके भीतर ही, मैंने दूर कर दिया था। अगर हो सकता तो कमलाकी तरह (क्या वह बात तुम्हें याद आती है?) मैं भी सुखसौभाग्यमें पड़कर उसीके समान सब कुछ भूल जाती। लेकिन भगवानने मेरे कर्ममें वह नहीं लिखा था। दरिद्रताके पाषाण-फलकपर तुम्हारी दयापूर्ण मूर्ति अंकित हो जाया करती थी; लेकिन मैं उसे बराबर अँधेरेमें ही छिपाती रही हूँ। आज तुमसे सत्य कहती हूँ कि मैंने स्वयं भी उस मूर्तिको बाहर निकालकर कभी नहीं देखा। देखनेका अवसर भी न था। परन्तु आज वह अवसर मिल गया है। आज और कोई काम नहीं है—मैं अब विश्राम करूँगी। इसी लिए मालूम होता है कि तुम मेरे सम्मुख आकर खड़े हो गये हो।

" मैंने मनमें सोचा था कि तुम्हें बहुत कड़ी कड़ी बातें लिखूँगी, तुमपर खूब क्रोध प्रकाश करूँगी, लेकिन न जाने क्यों आज वे सब भाव आपसे आप मेरे मनसे दूर हो रहे हैं। संसारके किसी आदमीपर मेरा कुछ दावा नहीं, किसीपर कुछ क्रोध—क्षोभ नहीं, किन्तु तुम्हारे सम्बन्धमें क्यों मेरे मनमें इतना अभिमान पैदा हो गया था, सो म नहीं कह सकती।

" आज मेरे मनमें किसी प्रकारका अभिमान नहीं है। मैं समझती हूँ कि मैंने यह अन्याय किया है, जो तुमसे सहायता नहीं ली। क्या तुम्हारे ऊपर मुझे क्रोध करना चाहिए था? पर जो कर चुकी सो कर

चुकी, अब तो वह लौटकर आ नहीं सकता । इस समय केवल यही प्रार्थना है कि मेरी माँ, बहिन और कालीपर दया रखना, जिसमें उन-पर किसी तरहकी विपत्ति न आवे । अगर हो सके तो हरिको भी अच्छी राह पर लानेकी चेष्टा करना । न जाने क्यों मुझे ऐसा मालूम होता है कि मेरे संसार छोड़ते ही इन लोगोंकी दशा सुधर जायगी, इनके सारे दुःख दूर हो जायँगे ।

" तुम इस विषयमें किसी तरहका मानसिक कष्ट न पाना । ईश्वर करे तुम खूब सुखी होओ । अगर हो सके तो सावित्रीका विवाह किसी अच्छे पात्रसे कर देना । अच्छा तो लो, अब मैं चली—प्रणाम ।

—सती । "

तेरहवाँ परिच्छेद ।



पत्र पूरा हो गया तो भी विश्वेश्वर स्पन्दनहीन पाषाणमूर्तिकी तरह खड़े रहे । उनमें कुछ भी सोचने विचारनेकी शक्ति नहीं रही । वे जितनी देर तक पत्र पढ़ते रहे उतनी देर तक तो अनाड़ी तैरने-वालेकी तरह अगाध जलमें डूबते उतराते रहे और इस समय मानों एकदम अतल जलमें चल गये । हाथ पैर काठ हो गये, उनमें मानों कोई शक्ति ही नहीं रही, हिलना डोलना भी मोहाल हो गया । यद्यपि वे आँखें फाड़े हुए थे तो भी उन्हें कुछ दिखलाई न देता था । मन चञ्चलतारहित और निस्पन्द हो रहा था ।

सहसा कमरेके बाहर अन्नपूर्णाके कण्ठका स्वर सुनाई दिया । वे मानों आर्त्तकण्ठसे पुकार रही हैं—" विशू ! विशू ! " पर विश्वेश्वरमें उत्तर देनेकी शक्ति न थी ।

अन्नपूर्णाने घरके भीतर प्रवेश करके कहा, "विशू, तू घरहीमें है? तूने गाँवका भी कुछ हाल-चाल सुना है?"

"हाँ, सुना है"

"तो भी तू अबतक खड़ा ही है? जा जल्दी दौड़ जा। अब भी उपाय हो सकता है"

"कैसा उपाय?"

"अभी तो कहता था कि सुना है। क्या सुना है? रामशंकरका मकान महाजनने दखल कर लिया है। आज तीन दिन हुए, उन लोगोंने नोटिस दिया था। दुर्भाग्यकी बात कि मैं घरपर नहीं थी। एक गाँवमें रहनेपर भी इन लोगोंका घर इतना दूर है कि कल साँझको घरपर आ गई, तो भी मुझे कोई खबर न मिली। रामधनकी माँ अभी देखकर आई है कि महाजन और उसके प्यादोंने घर घेर लिया है। थोड़ी ही देरमें वे सबको हाथ पकड़कर घरसे निकाल देंगे और तब वे बेचारी गलीगली मारी फिरेंगीं। जा; जल्द जा, मैं भी चलती हूँ। पहले तू पहुँच कर उन लोगोंको रोक तो ले।"

विश्वेश्वरने आँखें फाड़कर देखा कि मौसीकी आँखोंसे झरझर आँसू बह रहे हैं। उनकी भी आँखें भर आईं, सोचा शायद जानेसे अब भी कोई उपाय हो जाय अब भी शायद सती बचाई जा सके। विश्वेश्वर सिरपर पैर रखकर दौड़े।

उन्होंने जाकर देखा, भट्टाचार्यजीके दरवाजेपर पड़ोसियोंकी भारी भीड़ लगी है। महाजन और प्यादे घरमें घुसनेका उद्योग कर रहे हैं। भीतरसे रोनेकी आवाज आ रही है। कुछ पड़ोसियोंके आनन्दका ठिकाना नहीं है। वे कह रहे हैं कि जिनका अहंकार इतना बड़ा है

उनकी यह गति होनी ही चाहिए। अरे! हम लोग पास पड़ोसके थे, कभी तो इन्होंने हम लोगोंसे कुछ नहीं कहा। क्या कहना नहीं चाहिए था? गरीबका इतना बड़ा दिमाग? विश्वेश्वरको देखकर एकने कहा, "क्यों बाबू, अब हम लोगोंके हाथमें क्या है? और ये भलेमानुस भी अपना पावना कैसे छोड़ सकते हैं? हमें इसके बीचमें न पड़ना चाहिए। चलो बाहर चलें।" विश्वेश्वरने इस बातका कोई उत्तर न दिया। उनके कानोंमें मानों और ही तरहकी रोदनध्वनि सुनाई दी। उन्हें जल्दी जल्दी द्वारकी ओर जाते देख महाजन बड़े अदबसे रास्ता छोड़ हट गया। साथ साथ प्यादे भी रास्ता छोड़ किनारे हो गये।

जिस कमरेसे रोनेकी आवाज आ रही थी, आँगन पार करके विश्वेश्वर उसी कमरेकी ओर गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, जेठानीजी दरवाजेपर बैठीं जोर जोरसे चिल्ला रही हैं, कमरेके बीचमें सावित्री और काली धूलमें पड़े सिसक रहे हैं और जाह्नवी किसीको भर-अँकवार पकड़े चुपचाप छटपटा रही हैं। विश्वेश्वर उनकी बगलमें जाकर खड़े हो गये और आर्त्तकण्ठसे पुकार उठे—"सती!" यह शब्द सुनते ही सबने उनकी ओर आँखें उठाकर देखा। बालक काली चिल्ला उठा,—"ओ विशू भैया! मेरी जी-जी मेरी जी-जी—" विश्वेश्वरने विकृत कण्ठसे पूछा "क्या हुआ!"

"जानते नहीं विशू भैया? जी जी कुछ बोलती नहीं हैं। चाची कहती हैं कि वह मर गई।"

विश्वेश्वर वहीं घुटनोंके बल बैठ गये और जाह्नवीको बलपूर्वक अलग करने लगे। इसी समय वे जोरसे चिल्ला उठीं और गिड़गिड़ाती हुई बोलीं, "कौन है? निर्दय! हट यहाँसे। अभी नहीं।

कुछ देर बाद मैं तो आप ही छोड़ दूँगी। अभी मुझे थोड़ी देर कले-जैसे लगाये रहने दे।"

"माँ! मैं हूँ विश्वेश्वर। मुझे एक बार देखने दो। यदि अब भी बचाई जा सकती हो तो—" जाह्नवीने आँखें फाड़कर देखा और तब वे और भी गिड़गिड़ाकर बोलीं, "कौन है बेटा? विशू! तुम क्या मेरी सतीको शरण देनेके लिए आये हो? आज क्या मेरी सतीका विवाह है? क्या मैंने उसका बूढ़ेके साथ विवाह नहीं किया था? क्या मेरी सती जहर खाकर नहीं मेरी? तब क्या मैंने सपना देखा है? आओ बेटा, आओ।"

विश्वेश्वरने जाह्नवीको बड़े कष्टसे एक ओर हटाकर देखा—सती दोनों हाथोंसे मुँह छुपाये उलटी पड़ी है। उसे छूनेका उन्हें सहसा साहस नहीं हुआ। वह न जाने किस महा-चिन्तामें निमग्न थी—किस योगकी समाधिमें सोई थी—उस समाधिका भंग करनेसे अपराधीको मानों भस्मीभूत होना पड़ेगा! विश्वेश्वरका संकोच देख सावित्री उठकर आई और दोनों हाथोंसे सतीको पकड़कर उसकी करवट बदलकर रुँधे कण्ठसे बोली, "देखिए—देख लीजिए, अब कुछ आशा भरोसा नहीं है। जीजी तो बहुत देरकी चल बसी।"

तो भी विश्वेश्वरको ऐसा मालूम होता था मानों सती अब भी जीती है। उन्होंने उसकी शीतल नाकके पास उँगली ले जाकर देखा, कालापन छाई हुई बन्द आँखोंको खोलकर देखा, मुँहमें उँगली देकर जिह्वाका उत्ताप अनुभव करना चाहा, पर कहीं कुछ नहीं—सारा शरीर ठण्डा हो गया है। वे बोले—"देह बिल्कुल सर्द हो गई है। कहीं कुछ नहीं है।"

"विशू! बेटा! क्यों व्यर्थ चेष्टा कर रहे हो? मेरी सती बहाना करनेवाली नहीं है। जितने दिन कष्ट सह कर बची हुई थी उतने दिन किसीसे भी उसने अपना कष्ट नहीं कहा। पर आज असह्य हो गया, इसी लिए चली गई। इस समय भी उसने किसीको यह कहनेका अवसर नहीं दिया कि अभी कुछ दिन और रह जाओ। बेटा अब इस समय थोड़ी देरके लिए मुझे छोड़ दो। जन्मभर दुःखकी आँचसे जल-जलकर लड़की खाक हो रही थी, आज उसकी जलन मिट गई, वह शीतल हो गई। छोड़ दो बेटा! मैं अपनी सतीका शीतल शरीर, शीतल हृदय अपने हृदयसे लगा लूँ। मेरी सती ऐसी निश्चिन्त होकर जन्म भरमें कभी न सोई थी। आज मेरी प्यारी बेटी सुस्थ मनसे, सुस्थ शरीरसे सो रही है, जी चाहता है कि मैं इसे खड़ी खड़ी देखा ही करूँ।"

सारा मकान लोगोंसे भर गया। "यह क्या हुआ? कैसे हुआ? कैसे मरी? क्या खाकर मरी? जहर कहाँसे मिला? किस दुःखसे उसने विष खाया? क्या किसीने कुछ कहा सुना था?" इत्यादि प्रश्न चारों तरफसे होने लगे। लोगोंके कोलाहल और उत्साहसूचक आन्दोलनसे इस समय जेठानीजीको भी चुप हो जाना पड़ा! अनुसंधान करनेवाले परोपकारी लोग तरह तरहके तर्क-वितर्क करने लगे। खोजने पर सतीके सिरहाने दवाकी एक शीशी और कागजका एक टुकड़ा मिला। कागजमें लिखा था "मैंने आप ही अपनी इच्छासे आत्महत्या की है। मेरी माँ, बहन, भाई या और कोई आत्मीय स्वजन इसका रत्ती भर भी हाल नहीं जानता। इति।—**सती**।"

बाहरसे महाजनके आदमियोंने आकर कहा, "अच्छा, आज रहने दो, आज घरपर विपत्ति है। हम लोग जाते हैं, लेकिन कल बिना पावना लिये न टलेंगे।" इसका किसीने कुछ उत्तर न दिया।

विश्वेश्वरने देखा कि अन्नपूर्णा जाह्नवीकी शुश्रूषा कर रही हैं और बीच बीचमें सतीका ललाट और वक्षःस्थल स्पर्श करके देखती हैं। उन्होंने विश्वेश्वरको पास बुलाया और उन्हें कुछ नोट देकर कहा— "उन लोगोंको दे-दिलाकर बिदा कर दे, जिससे वे कल फिर न आवें।"

विश्वेश्वरने महाजनको एकान्तमें ले जाकर उसका हिसाब तै कर डाला। एक तो महाजन विश्वेश्वरका लिहाज करता था, दूसरे उसे खर्चसमेत ७००) रुपयेके ऊपर ही मिल गया, इस लिए मौर्ट-गेजके कागजपर वसूली लिखाकर और उसे विश्वेश्वरके हाथमें देकर वह चल दिया। कागजको विश्वेश्वरने अपने ही पास रख लिया।

उन्हें घरके भीतर आते देखते ही लोग चारों ओरसे प्रश्न करने लगे। तब विश्वेश्वरने उनको यह कहकर समाधान कर दिया कि बेचारा महाजन भला मानुस था, इसीसे कुछ दिनके लिए और ठहर गया। पर लोगोंको इससे एक तरहकी निराशा ही हुई। वे लाचार होकर बोले, " अब इधर क्या होता है ? विना दारोगाको खबर दिये तो चलनेका नहीं। हम लोगोंने खबर भेज दी है। दारोगा आते ही होंगे। तारापुरके डाक्टर साहब भी आ रहे हैं।" विश्वेश्वर चुपचाप बैठ रहे।

डाक्टर और दारोगा एक साथ ही आ पहुँचे। विश्वेश्वरको देख-कर वे बड़े अदबसे पेश आये। विश्वेश्वर उन लोगोंके अभिवादनका जवाब देकर उनके साथ साथ घरके भीतर गये। उस समय विश्वे-श्वरका मुँह सूखा हुआ था। डाक्टर चुपचाप मृत देहकी परीक्षा करने लगे और दारोगा साहब दवाकी शीशी और कागजका टुकड़ा लेकर देखने लगे। विश्वेश्वरने देखा—सतीका शान्त, निद्राच्छन्न मुख मानों लज्जा और घृणासे काला हो रहा है। प्रशान्त शुभ्र ललाट-

पर आशंकाकी नीली छाप लगी हुई है। लाज रखनेके लिए मानों सती मन-ही-मन ईश्वरको गुहरा रही हैं। विश्वेश्वरने दूसरी ओरको मुँह फेर लिया।

अन्नपूर्णाने विश्वेश्वरके पास आकर धीरे धीरे बहुत बातें कहीं; पर उन्हें वे केवल सुनते ही रहे। कोई बात कहने या करनेकी उनमें शक्ति न थी। इसी समय डाक्टरने पुकारा, " विश्वेश्वर बाबू !" विश्वेश्वर पास चले गये।

" रोगीको मरे बहुत देर हुई। देखते हैं कि 'बेलाडोना' मिली हुई मालिशकी दवा खानेसे मृत्यु हुई है। मालूम होता है, आत्महत्या ही की गई है।"

दारोगा साहब बोले " यह दवा किसके दवाखानेसे आई है? देखते हैं हरे बाबूके दवाखानेका नाम है। पर यह आई कैसे?"

जेठानीजीने रोते रोते कहा—" बहू जाह्नवी बीमार थी। उसे बड़ा दर्द होता था, इसलिए यह दवा मालिशके लिए मँगवाई गई थी। दर्द आराम हो गया, इस लिए पड़ी रह गई; ज्यादा खर्च नहीं हुई। उस समय थोड़ी ही तो लगने पाई थी।"

विश्वेश्वर समझ गये और डाक्टर और दारोगाका मुँह ताकने लगे। तब डाक्टरने विश्वेश्वरका मन टटोलनेके लिए पूछा, " कर्त्तव्य तो हमारा यही है कि मुर्दा हास्पिटलमें पहुँचाया जाय—अब आप क्या कहते हैं?"

विश्वेश्वर काँप उठे; मीठे स्वरसे बोले, "अगर और कोई उपाय हो तो कहिए। जहाँतक हो सकेगा मैं आपको सन्तुष्ट करूँगा। आप इसे मेरे ही घरकी बात समझिएगा। क्या इस विपत्तिमें आप सहायता नहीं करेंगे?"

" मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं तो स्वाभाविक मृत्युकी रिपोर्ट लिखने तकको तैयार हूँ। आप दारोगाको राजी कर लीजिए।"

दारोगाको हाथमें करते देरी नहीं लगी। 'हैजेसे मृत्यु हुई है' यही लिखा दिया गया। दारोगा और डाक्टर चले गये। गाँवके लोग लाचार निराश होकर तरह तरहकी बातें करते करते चले गये। कोई कोई बड़े लाचार हो अपनी साधुता दिखलानेके लिए विश्वेश्वरकी बड़ी प्रशंसा करने लगे और इस बातका प्रमाण देने लगे कि इस समय हमारा हाथ बहुत ही तंग था। यदि हमारे हाथमें कुछ भी होता तो क्या हम इतनी देर तक चुप रहनेवाले थे ? दारोगाको कुछ दे-दिलाकर सब झगड़ा रफा-दफा कर लेते, कोई कानोंकान भी यह बात नहीं जान पाता। कोई कोई कहते, "अरे! यह सब उसकी मौसीकी करतूत है। वह बड़ी भली मानुस है। वह न होती तो इस कंजूसके लड़केसे क्या हो सकता था!" कोई कोई कुछ और ही सोचते विचारते परम गम्भीर भावसे सिर हिलाते हुए चल दिये और सीधे अपने अपने घर पहुँचे, क्योंकि वहाँ रहनेसे शायद मुर्दा उठानेकी झंझटमें पड़ना पड़ता!

विश्वेश्वर अपने तीन ब्राह्मण कर्मचारियोंको बुला लाये और उन्हें आँगनमें खड़ा कर आप घरके भीतर चले गये। वहाँ वे अन्नपूर्णाके मुँहकी ओर देखकर एक तरफ चुपचाप खड़े हो गये। अन्नपूर्णा समझ गई। उसने खेदपूर्ण गम्भीर स्वरमें जाह्नवीसे कहा, "बहू! सतीको अब उसके बापके पास पहुँचा देना होगा। हम लोग उसके कष्ट एक दिनके लिए भी दूर नहीं कर सके, इससे अब वह बापके पास जाती है। बहू! लड़की तो जन्मसे ही पराये घरकी चीज है। सतीको उसके स्वामीके पास—"

"यह बात मत कहो, बहिन! यह बात मत कहो! मेरी सती क्वाँरी है। मैंने उसका ब्याह कब किया था ? वह घाटका मुर्दा क्या

मेरी सतीका वर था ? मेरी क्वाँरी लड़की उनके (रामशंकर) पास जायगी। सतीकी यह धोती खोल दो, बहन! लड़कपनमें जो नीली धोती पहिनाकर वे इसे बाहर घुमानेके लिए ले जाते थे वही पहिना दो। थोड़ी काँचकी चूड़ियाँ भी पहिना दो। मैं अपने सतीको विधवाके वेशमें कभी न जाने दूँगी, वे मुझसे क्या कहेंगे ?—"

अन्नपूर्णाने देखा कि इस समय समझाना बुझाना किसी कामका नहीं और सावित्रीसे कहा, "सावित्री! आओ, माँको जरा सँभालो।" सावित्री दौड़ी हुई आई और सतीकी मृत देहसे लिपटकर आर्त्त कण्ठसे बोली, "ऐसी बात मत कहो बुआ! मेरी जीजी कहाँ जायगी ? वह तो कभी कहीं नहीं गई, फिर आज क्यों जायगी ? हम लोगोंको छोड़कर वह कहाँ जायगी ?"

कुछ समयके बाद अन्नपूर्णाने कहा, "बहू! क्या करती हो ? जो गई सो गई, अब इन बच्चोंका देखो और इन्हें बचाओ।"

अब जाह्नवी उठकर बैठ गई। उसने घूँघट खींचकर मुँह ढाँप लिया और सावित्रीको एक ओर हटा दिया। फिर वह सतीकी लाशको गोदमें लेकर उसके मुँहकी ओर एकटक दृष्टिसे निहारने लगी—जिसपर मृत्युकी सघन छाया पड़ी हुई थी—और उसके ठंडे गालोंको चूमते हुए कहने लगी,—"बेटी! सती!! हाय तू जाती है! अच्छा तो जा! मेरे पास रह कर तूने बड़े बड़े कष्ट भोगे। अब उनकी गोदमें जा और छोटीसी सती बनकर सो जा। लेकिन बेटी! प्राणप्यारी! एक बार अन्तिम बार मुझे भी माँ कहकर पुकारती जा! हाय! कल रातको मेरे पाँयताने सोई सोई तू पैर दाब रही थी, तब मैंने नहीं जाना था कि तू मुझे छोड़े जा रही है। अगर मैं जानती तो उसी घड़ी तुझसे माँ कहकर पुकारनेको कहती। बेटी! तू क्या सचमुच सदाके लिए

मुझे अकेली छोड़कर चली जा रही है ? जा बेटी ! जा ! विश्वेश्वर ! यह लो, सतीको ले जाओ । " जाह्नवीने मानों सचमुच ही विश्वेश्वरके चरणोंमें कन्याको समर्पण कर दिया । उसकी दुबली पतली देहको विश्वेश्वरने दोनों हाथोंसे ऊपर उठा लिया और पूर्वोक्त तीनों ब्राह्मण उनके हाथसे मृत देहको छीनकर बाहर ले चले । विश्वेश्वर भी चुपचाप पीछे हो लिये । सावित्री दौड़ती हुई आई और उनके पैरोंपर पागलिनीके समान पछाड़ खाकर गिर पड़ी । वह गिड़गिड़ाकर कहने लगी, "भैया ! विशू भैया ! ! मैं तुम्हारे पाँवों पड़ती हूँ, मेरी बहिनको मत ले जाओ । उन लोगोंसे कह दो कि वे उसे छोड़ जायँ । अजी, क्या तुम लोगोंके हृदयमें तनिक भी दया नहीं है ? मेरी जीजीको लौटा दो, छोड़ दो, छोड़ दो, छोड़ दो । "

विश्वेश्वर आर्तकण्ठसे रोने लगे, बोले, " मौसी ! "

अन्नपूर्णा बाहर आई और सावित्रीको किसी तरह जबर्दस्ती करके घरके भीतर ले गई । उन्होंने उसे बलपूर्वक जाह्नवीकी गोदमें बिठाकर कहा—" बहू ! इसे सँभालो, नहीं तो उसके साथ यह भी चली जायगी । बहू ! देखो, इसके मुँहसे फेन निकल रहा है । इसे थोड़ेसे जलसे धो दो । काली ! जरा पंखा तो दे मुझे । "

जाह्नवीने सावित्रीको छातीसे लगाकर कहा, "सावित्री ! सावित्री ! !"

" माँ ! जीजी ! जीजी ! जीजी कहाँ गई ? "

विश्वेश्वर कालीको लिए हुए अर्थीके साथ साथ नदीके तीर पहुँचे । दो ही ब्राह्मण सतीकी फूल सी लाशको वहाँ तक ले आये । वहाँ चिता सजाई गई, शवको स्नान कराया गया, नया वस्त्र पहिनाया गया और कालीके द्वारा चितामें आग दिलाई गई । बूढ़े रामतनु कालीको कुछ दूर ले गये और उसे तरह तरहसे समझाने लगे । विश्वेश्वर एक

वृक्षकी पीढ़के सहारे बैठे बैठे देख रहे थे—सतीके वक्षपञ्जरसे आगकी लपटें उठ-उठकर 'हू हू हू ! घू घू घू !' कर रही थीं।

चौदहवाँ परिच्छेद ।



अन्नपूर्णाने जाह्नवीको कुछ दिनोंके लिए अपने घरपर चलनेके लिए बहुत अनुरोध किया; पर जाह्नवीने एक न सुनी, वे बोलीं, "बहिन, मुझे यहीं रहने दो। इसी घरमें वे मरे, सती मरी, मेरी सतीकी आत्मा इसमें अकेली आकर रहेगी और 'माँ, माँ,' कहकर पुकारेगी। मैं यह घर छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी।" लाचार होकर अन्नपूर्णाको ही स्वयं कुछ दिनोंतक रातके समय वहाँ रहना पड़ा। उस समय जेठानीजी अपने एक दूसरे भूले हुए नातेकी बहिनके लड़केके यहाँ चली गई थीं!

अब तक उससे उनका नाता एक प्रकारसे टूटा हुआ था, पर न जानें क्यों उन्होंने फिर जोड़ लिया। प्राणोंके आगे मान-अपमान कोई चीज नहीं है। उन्हें डर था कि घरमें सोते ही सतीका भूत आकर उनकी गरदनपर चढ़ बैठेगा! उनको पूरा विश्वास हो गया है कि सती मरकर भूत हो गई है और बार बार इसी घरमें घूमा करती है। अगर साक्षात् ब्रह्माजी भी आकर कहें कि यह बात नहीं है, तो भी वे कभी विश्वास करनेकी नहीं हैं। सदाकी संगिनी छेमीको भी जाह्नवीको ढाढ़स बँधानेके लिए वहीं रहना पड़ा।

चौथे दिन कालीने यथाविधि श्राद्ध किया। विश्वेश्वरने जाह्नवीके कहनेसे सतीकी सौतिनके बेटेको उसकी मृत्युका सम्वाद और रुपया पैसा भेज दिया और फिर कालीसे ही सतीका श्राद्ध कराया। जाह्नवीका विश्वास था कि ऐसा किये बिना सतीकी तृप्ति न होगी।

विश्वेश्वर पागल हो रहे थे। दारुण दुर्घटना और अप्रत्याशित विपत्तिसे मनुष्यका हृदय जिस प्रकार विकल हो जाता है, उनका भी वैसा ही हुआ। सहसा एक दिन उन्हें याद आया कि सावित्रीसे सतीके रक्तसे रँगे हुए वे नोट लेकर उस पापीको लौटा देना चाहिए, जिससे वह पापका धन सावित्रीके पास बहुत दिनोंतक न रहे। सावित्री नहीं जानती कि उस धनका मोल कितना है। एक दिन विश्वेश्वर नदीके किनारे घूमने गये थे। वहाँसे उन्होंने एक वार दूरस्थित श्मशानकी ओर चकितकी भाँति देखा। उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानों वह न बुझनेवाली आग अब भी निठुर जगतको सुना-सुनाकर हुंकार छोड़ रही है, अब भी मानों उसी चितापर जलती हुई सती गर्म्म साँसे ले रही है—हू हू हू।

विश्वेश्वरको भय मालूम हुआ, वे नदी तीर छोड़कर गाँवकी ओर चल दिये और बहुत देरतक गाँवकी गलियोंमें ही चक्कर लगाते फिरे।

उस दिन उस गाँवके बाबू लोगोंकी बैठक बड़ी गुलजार हो रही थी। वे लोग संगमर्मरके चबूतरेपर बैठे हुए, उजले पाखकी दशमीकी चाँदनीमें खिले हुए फूलोंकी मीठी मीठी सुगन्धयुक्त समीरका आनन्द लेते हुए तन्मय हो रहे थे। तबला और हार्मोनियमके साथ साथ बहाला भी बज रहा था और गानेका समा बँध रहा था। विश्वेश्वरने आँखें फाड़कर देखा और सोचा कि पृथ्वी जब ऐसी सौन्दर्यमयी है, तब मनुष्यको इतना दुःख क्यों है? कोई तो सुखके सातों समुद्रोंमें गोते लगाता है और कोई भूखा प्यासा प्राणत्याग करता है। ऐसा क्यों होता है? मनुष्य एक दूसरेकी ओर क्यों नहीं देखता? एक दूसरेका दुःख क्यों नहीं समझता? तब तो पृथ्वीका यह आनन्द, उल्लास, शोभा, ऐश्वर्य, सब कुछ पैशाचिक हास्य है! भीतरी दुःखको छिपानेके लिए ही पृथ्वीकी यह कृत्रिम शोभा है! पर यह निष्फल—बिल्कुल

ही निष्फल है। उन्हें गाना, बजाना अच्छा न लगा,—इस लिए वे लौट पड़े। बहुत दूर—जहाँ बाजेकी उत्कट ध्वनि मस्तकको पीड़ा नहीं देती थी ऐसी जगह—आनेपर उन्हें एक करुणरसभरी मीठी तान सुनाई दी। वे खड़े हो कान लगाकर सुननेकी चेष्टा करने लगे—गाना साफ सुनाई देने लगा। कोई गा रहा था—

राग–देस।

आओ अहो, स्वर्गसे आओ,
जलते हुए जगतसे मुझको,
अपनी गोदीमें ले जाओ।
वारम्बार पुकार रहा हूँ,
इस ज्वालासे मुझे बचाओ॥

विश्वेश्वरका सिर मानों घूमने लगा। यह गाना कौन गाता है? वह इस आनन्दमयी रात्रिमें ऐसा खेदपूर्ण गीत क्यों गाता है? जो गा रहा है वह क्या समझ रहा है कि उसके गानेके सुरमें सुर मिलाकर और भी न जाने कितनी देहहीन आत्मायें रो–रोकर पृथ्वीको सुना रही हैं कि—

मिटी न साध न पूरी आशा,
सब कुछ गया दया दिखलाओ।
इस पृथिवीपर प्रेम नहीं है,
प्रेमरहित हो मत भटकाओ।
जहाँ प्रेम ही प्रेम भरा हो,
बस अब मुझे वहीं पहुँचाओ॥

अब तो विश्वेश्वरकी आँखोंमें आँसू भर आये। सचमुच क्या इस पृथ्वीमें प्रेम नहीं है? कौन किसके चरणोंमें जीवन अर्पण कर चुपचाप मर जाता है, इसकी खबर कौन रखता है? सतीने जो इस प्रकार

अपनेको उत्सर्ग कर रक्खा था, इसकी क्या मुझे खबर थी? मुझे नमस्कार करके वह चुपचाप इस संसारसे चली गई। पर उसकी आत्माने क्या अपनी मनचाही वस्तु पाई? यह जो करुणाकी समवेदनाके मारे मेरा हृदय व्यग्र हो रहा है, सो वह क्या इसी समवेदनाको चाहती थी? यही क्या वह प्रेम है? जब ऐसी सुशीला, धैर्य्यमयी, सुन्दरी, अनाहार, कष्ट, चिन्ता और पृथ्वीके कुत्सित व्यवहारसे तंग आकर और एक आदमीको चुपचाप बिना कहे सुने प्यार कर इस प्रकार प्राणत्याग करती है, तब क्या वह (मैं) भी इसी तरह रोदन किये बिना रह सकता है? क्या वह भी हृदयमें दारुण व्यथाका अनुभव न करेगा? महज एक किताब पढ़कर हृदय दुःखसे व्याकुल हो उठता है, तब ऐसा वास्तविक करुण दृश्य देखकर भी जिसे रुलाई न आवे ऐसा निर्दय कौन है? यही क्या पृथ्वीका प्रेम है? तब क्या सचमुच इस संसारमें प्रेम नहीं है?

गाना तब भी चल रहा था:—

महा कष्टसे मिटी वासना,
अब न विलम्ब करो अपनाओ।
रोया बहुत कहाँ तक रोऊँ,
फटता है यह हृदय, जुड़ाओ।
आओ अहो, स्वर्गसे आओ,
जलते हुए जगतसे मुझको,
अपनी गोदीमें ले जाओ।

विश्वेश्वर अबके धीरेसे बोल उठे, "तूने अच्छा किया सती, जो इस संसारसे हाथ छुड़ाकर भाग गई।"

गाना बन्द हो गया। तो भी मानों वह करुणाभरी तान चारों ओर करुणाकी वृष्टि कर रही थी। दुःखसे कलेजा पानी पानी हो

रहा था। जब असह्य हो गया विश्वेश्वर धीरे धीरे आगे बढ़ चले। थोड़ी दूर चलनेपर उन्होंने देखा कि सामने ही रामशंकरका टूटा-फूटा शोभाहीन आँगन-घर निखरी हुई चाँदनीमें ऐसा मालूम होता है जैसे कोई विधवा सफेद साड़ी पहने हुए पड़ी है। धीर धीरे वे आँगनमें पहुँच गये। देखा, तुलसी-चौंतरेपर चिराग रखकर, घुटने टेके, हाथ जोड़े हुए कोई स्त्री बैठी हुई है। कौन है? क्या सती है? वैसी ही तो मालूम होती है! वैसे ही रूखे बाल, दुबली पतली देह, फटे पुराने कपड़े, उदास और पीला चेहरा, सब कुछ वैसा ही है। विश्वेश्वरके जीमें आया कि मैं 'सती' कहकर जोरसे पुकारूँ। लेकिन मुँहसे बोली नहीं निकली। वे चुपचाप सकपकायेसे खड़े हो रहे।

जो स्त्री तुलसी चबूतरेके पास बैठी हुई थी, वह धीरे धीरे उठ खड़ी हुई और विश्वेश्वरको इस तरह चुपचाप खड़ा देख विस्मित होकर कोमल कण्ठसे बोली, "कौन है?" अबके विश्वेश्वरने जाना कि यह सती नहीं सावित्री है।

"कौन है?—विशू भैया? इस समय कैसे आये? क्या माँको बुलाऊँ?" सावित्रीका वह करुणापूर्ण धीमा स्वर सुनकर विश्वेश्वरकी आँखोंमें फिर आँसू भर आये। उन्होंने धीरेसे कहा, "नहीं, तुम्हीसे काम है।" सावित्री चुपचाप हो रही।

"तुम्हारी बहिन तुम्हें कुछ दे गई है?"

"हाँ, बहुतसे नोट हैं; उन्होंने न जाने कहाँ पड़े हुए पाये थे।"

"सबके सब रक्खे हुए हैं या कुछ खर्च भी हो गये हैं?"

"एक भी नहीं।"

"अच्छा उन सबोंको लाकर मुझे दे दो।"

सावित्री भीतर चली गई। उसने थोड़ी देर बाद नोटोंका एक पुलिन्दा लाकर विश्वेश्वरके हाथमें दे दिया। उन नोटोंको अपने हाथमें लेते हुए भी विश्वेश्वरका कलेजा काँप रहा था; किन्तु कहीं सावित्रीके मनमें कोई सन्देह न हो, इस लिए उन्होंने वे चुपचाप ले लिये और फिर पूछा, "तुम्हारी माँको इन नोटोंकी बात मालूम है या नहीं?"

"नहीं। मैं सोच ही रही थी कि एक दिन उनसे कहूँ।"

"नहीं कहा सो अच्छा ही किया, अब मत कहना। जिसके नोट तुम्हारी बहिनने पाये थे मैं उसे ही जाकर दे आऊँगा।" सावित्रीने सिर हिलाकर अपनी सम्मति जतला दी। विश्वेश्वरने मौसीसे सुना था कि सावित्री बड़ी उदास हो रही है। वह न उठती है, न खाती है, न किसीसे बातें करती है। जाह्नवीने बहुत कुछ समझाया बुझाया; पर उसका कुछ भी फल न हुआ। इसलिए इस समय विश्वेश्वरने चाहा कि उससे कुछ बातें करूँ और उसे ढाढस बँधाऊँ। उन्होंने पूछा, "तुम वहाँ बैठी क्या कर रही थीं, सावित्री!"

"तुलसी-चौंतरेपर दिया रखने गई थी।"

"मैंने देखा था कि तुम हाथ जोड़े हुए न जाने क्या कह रही हो।"

सावित्री सिर नीचा किये मृदु स्वरमें बोली, "मैंने सुना है कि आत्महत्या करनेसे मनुष्यकी गति अच्छी नहीं होती, इसीसे भगवान्‌के नामपर दिया जला—" कहते कहते सावित्रीका गला रुँध गया।

विश्वेश्वरकी आँखोंमें आँसू आ गये। उन्होंने कुछ देर बाद अपने रुँधे हुए गलेको साफ करके कहा, "सावित्री! तुम्हारी बहिन स्वर्ग गई है। उसकी सी पुण्यवती भी क्या दुर्गतिमें जा सकती है? तुम्हें इस बातपर विश्वास होता है?"

" आप कहते हैं कि जीजी स्वर्ग गई ? वहाँ वह अच्छी तरहसे होगी न ? "

" हाँ । "

सावित्रीने घुटने टेककर विश्वेश्वरको प्रणाम किया । इसके बाद उसने खड़े होकर धीमे स्वरसे कहा " तो अब मैं न रोऊँगी । वह हम लोगोंको छोड़कर चली गई, हमें भूल गई, इसका मैं अधिक दुःख नहीं मानूँगी, यदि वह जहाँ है वहाँ सुखसे हो तो । "

सावित्रीकी आँखोंसे मोतीकी सी आँसूकी बूँदें टपक पड़ीं । यह देख विश्वेश्वरके कलेजेपर गहरी चोट बैठी और उसे इस अवस्थामें छोड़कर जाते हुए उन्हें बड़ा कष्ट माळूम होने लगा । शायद अब यह पड़ी पड़ी रोया ही करेगी । कुछ सोचकर वे बोले, " तुम्हारी माँ कहाँ है ? कालीशंकर कहाँ गया ? "

" माँ उसीको सुला रहीं हैं । वह दिन रात जीजी जीजी कहकर रोया करता है, किसी भी तरह नहीं मानता । "

" तुम भी तो बहुत रोती हो सावित्री ! रोनेसे क्या बहिनको फिर पा जाओगी ? रो-रोकर माँको व्यर्थ कष्ट मत दो । "

सावित्री सिर नीचा किये जोरसे रो पड़ी, " मैं जीजीको छोड़कर अकेली कभी नहीं रही । हाय ! "

" सदाके साथियोंको भी लोग भूल जाते हैं । संसारका नियम ही यह है । "

" पर मैं इतनी जल्दी कैसे भूल जाऊँ ? आज जीजीकी सखी कमला आई थी । जीजीका साथ छूटे मुद्दत हो गई, तो भी वह उसका नाम ले-लेकर रोया करती है और सूखकर काँटा हो गई है । वह भी अब अधिक दिन तक नहीं जीयेगी । पराई होकर भी वे सब जीजीको नहीं भूलतीं, तब मैं किस तरह भूल जाऊँ ? "

"कौन आई थी? नरेन्द्रनाथकी स्त्री? सुननेमें आया है कि उसे बड़ा दुःख है।"

"हाँ, मैंने भी सुना है कि कमला बहिनको बड़ा कष्ट है। उसके स्वामी अच्छे आदमी नहीं है। वे कमला बहिनको बड़ा कष्ट देते हैं। जीजीकी आँखें कमलाका नाम लेते ही डबडबा आती थीं। कमलाको वे बहुत प्यार करती थीं।"

यह सुनकर विश्वेश्वरको एक बहुत पुरानी बात याद आ गई। इसी कमलाके विवाहके लिए सती दूती बनी थी और उसने विश्वेश्वरसे कमलाकी सिफारिश की थी। इससे उनके हृदयपर बड़ा आघात पहुँचा। इतनेमें जाह्नवीने दरवाजेपर आकर पुकारा, "सावित्री! तू किससे बातें कर रही है?"

सावित्रीने उत्तर दिया, "विशू भैयासे।"

"विश्वेश्वर! घरके भीतर आओ, बेटा!"

विश्वेश्वरने समीप जाकर उन्हें चुपचाप प्रणाम किया। उनके सामने आनेपर मानों उनकी साँस बन्द हुई जाती थी। उनसे वहाँ अधिक समय तक न ठहरा गया, वे तुरन्त ही बिदा माँगकर चल दिये।

दूसरे दिन बड़े सबेरे वे चाँदपुरकी ओर चल पड़े; क्योंकि प्रातःकाल टहलनेके समयके पहले ही उन्हें नरेन्द्रको पकड़ना था।

कुछ ही देरमें उनको जमीन्दार बाबुओंकी हृदय-हीन पत्थरोंकी अटारी दीख पड़ी। वे आँखें नीचेकी ओर किये हुए फाटकपर जा पहुँचे। बाहर ही नजर-बागमें नरेन्द्र एक बेञ्चपर बैठा हुआ प्रातःकालकी वायुका सेवन कर रहा था। उसका चेहरा उदास था। ऐसा जान पड़ता था कि वह किसी रोगसे पीड़ित है। विश्वेश्वर उसके सामने जाकर खड़े हो गये। उसने विस्मयके साथ पूछा, "आप कौन हैं?"

"मुझे लोग विश्वेश्वर मैत्रेय कहते हैं। मेरा मकान यहाँ पास ही मजूतपुरमें है।"

"मुझे ऐसा माळूम होता है मानों मैंने आपको कभी देखा है; अच्छा, बैठिए।"

"देखा होगा, इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? आप तो हवा खाने उधर बराबर ही जाया आया करते हैं। मैं मामूली आदमी ठहरा, आपने कभी कहीं देख लिया होगा।" नरेन्द्रने जरा चञ्चल होकर पूछा "आपका आना किस प्रयोजनसे हुआ?"

"प्रयोजन है, पर उसे मैं एकान्तमें कहना चाहता हूँ।"

"यहाँ एकान्त ही है। क्या कहना है, कहिए।"

बिना भूमिका बाँधे ही विश्वेश्वरने अपने पाकेटसे नोटोंका पुलिन्दा निकाला और नरेन्द्रके हाथमें देकर कहा—"ये आपके ही नोट हैं; गिनकर देख लीजिए, हजार रुपयेके हैं।"

नरेन्द्र स्तब्ध हो रहा और टकटकी लगाकर उनकी ओर देखने लगा। विश्वेश्वर चुपचाप दूसरी ओर देखने लगा। थोड़ी ही देरमें नरेन्द्रने कहा, "अगर आप कुछ बुरा न मानें तो मैं एक बात पूछूँ।"

"पूछिए।"

"आपको ये नोट कहाँ मिले?"

"जिन्हें आपने दिये थे वे ही दे गई हैं। वे मेरी आत्मीया थीं।"

"उन्होंने ही आपको दिये हैं? सुना है कि वे मर गई हैं?"

"मरनेकी बात ठीक नहीं है, उन्होंने आत्महत्या की है।"

"हाँ, हाँ, इसी तरहकी अफ़वाह सुनी है—अच्छा, तो आप उनके आत्महत्या करनेका कोई कारण जानते हैं?"

" हाँ, जरूर जानता हूँ। आपके हाथमें ये जो नोट हैं ये ही उनकी मृत्युके कारण हैं। ये नोट उनको लाचारीके सबब लेने पड़े, इसीसे जान देकर उन्होंने अपने आपको आपके हाथोंसे बचा लिया।"

" तब तो महाशय, आप इस मामलेमें बहुत कुछ जानते हैं। आपसे अब छिपाना व्यर्थ है। किन्तु आप मेरे ऊपर झूठा कलंक लगा रहे हैं। वे नोट नहीं लेतीं, तो मेरा क्या जोर था? मैंने तो जोर जुल्म नहीं किया। अपनी ही इच्छासे—"

" चुप, चुप, चुप रहो, तुम पापी हो! बातें करते हुए तुम्हारी जीभ नहीं काँपती? बतलाओ तो, उन्हें बारबार फुसलानेके लिए कौन जाता था? तुम भले आदमीके लड़के हो न? घृणित दुराचारिणी स्त्रियोंको लेकर दिन बिताते हो, इसी लिए क्या माँ, बहिन और स्त्रीकी ओर भी नहीं देखते? यह नहीं समझते कि भले घरकी स्त्री ऐसा पैशाचिक काम करनेको कब राजी हो सकती है? जो राजी होती है वह बड़े ही दुःखसे होती है। अपनी माँ, भाई और बहिनकी रक्षा करनेहीके लिए उसने तुम्हारे जैसे पापीका धन लिया; लेकिन वह कुलटाकी जाई नहीं थी, इसीसे स्वर्ग चली गई। यह लो अपना रुपया। जिस धनसे दुःखीका दुःख दूर किया जाता है, आर्त्त-आतुरोंकी प्राणरक्षा होती है, उसी धनने तुम्हारे हाथमें पड़कर एक साध्वी, दुःखिनी बालिकाके प्राण अकालमें ही हरण कर लिये। धिक्कार है तुम्हें और तुम्हारी प्रवृत्तिको! लेकिन यह ठीक समझ रक्खो कि तुमने कुप्रवृत्तिके वश होकर एक स्त्रीकी हत्याका पाप अपने सिरपर लिया है, इसलिए इस जीवनमें तुम्हें कभी शान्ति न मिलेगी। उसकी नष्ट आत्मा तुम्हारे पीछे पीछे निरन्तर घूमा करेगी और तुम्हें अधःपतित करके नरकमें घसीट ले जायगी। तुमने मनुष्यकी हत्या की है—तुम्हारे पीछे पीछे आत्महत्याका प्रेत घूम रहा है।"

नरेन्द्र सकपकाया हुआ ज्योंका त्यों बैठा रहा। उसके सारे शरीरसे पसीना छूट रहा था। भीरु पापी भयके साथ चारों ओर देखकर कम्पित कण्ठसे बोला, "मेरा आपने ऐसा क्या दोष देखा? मुझसे आप क्या करनेको कहते हैं? मैंने तो पहले हर्गिज नहीं सोचा था कि ऐसा भयानक काण्ड हो जायगा, अगर जानता तो ऐसा क्यों करता?"

"भले घरके लड़के होकर यदि भले घरकी बहू-बेटियोंके स्वभावको नहीं समझते तो तुम पशु हो। माँ और भाईकी रक्षा करनेके लिए जो अपने प्राण इस प्रकार दे सकती है, विचार कर देखो कि उसका हृदय कितना बड़ा होगा? नरेन्द्र, इस जन्ममें क्या कभी तुम्हारा उद्धार हो सकेगा? पापवासनाके वशमें आकर तुमने एक साध्वीके प्राण नष्ट कर दिये! तुम कितने बड़े पापी हो!"

नरेन्द्र चुप हो रहा। इन कई दिनोंसे वह सतीके हाथों ठगा जाकर, उसकी मृत्युका संवाद पा, भीतर-ही-भीतर किञ्चित् अनुतप्त हो रहा था। अब उसके अनुतापकी मात्रा पूरी हो गई। विश्वेश्वरने कहा, "मैंने सुना है कि हरिशंकर तुम्हारे ही सहारे बाबूगरी करता फिरता है। उसे जरा बुलाओ तो सही।"

नरेन्द्रने काठके पुतलेकी तरह उनकी आज्ञाका पालन किया। हरिको सतीकी मृत्युका संवाद एक आदमीसे मिल चुका था। वह डरा हुआ, उदास मुँह किये, विश्वेश्वरके सामने आकर खड़ा हो गया।

विश्वेश्वरने उसकी ओर उँगली उठाकर नरेन्द्रसे कहा, "यही न तुम लोगोंकी नाटकमण्डलीमें नायिका बनता है? इसको तुम्हें अब छोड़ देना पड़ेगा। इसकी माँ-बहिन इसके लिए बहुत ही रोया करती हैं। यदि तुम न छोड़ोगे तो उनकी आँखोंके आँसू तुम्हारा सर्वनाश और भी जल्दी कर देंगे। इसको तुम आज ही अपने घरसे निकाल दो।"

"आप ही इसको ले जाइए। अब मैं नाटकमण्डली ही तोड़े देता हूँ। इस नाटकने ही मेरा सर्वनाश किया है; नहीं तो महाशय! मैं ऐसा नीच मनुष्य नहीं था।"

"सो मैं जानता हूँ। तुम्हारी स्त्री कमला और सतीको मैं बराबर अपनी बहिन सी मानता आया हूँ। मैं सभीसे सुनता हूँ कि तुम्हारे व्यवहारसे तुम्हारी साध्वी पतिप्राणा स्त्री मरणापन्न हो रही है। सो वह भी किसी दिन आत्महत्या करके तुम्हारे पापकी नौकाके बोझेको दुगुना कर देगी। अब तुम्हारी नाव डूबनेमें बहुत देरी नहीं है।"

नरेन्द्र नीचा सिर करके रह गया। अब विश्वेश्वरने हरिकी ओर देखकर कहा "तुम्हें मेरे साथ ही अपने घर चलना होगा।"

हरिने दीनता भरे नयनोंसे नरेन्द्रकी ओर देखा और फिर करुणा भरे वचनोंसे कहा, "नरेन्द्र बाबू! मुझे आप—"

बीचहीमें बात काटकर नरेन्द्रने कहा, "हाँ, तुम चले जाओ। तुम्हीं लोगोंने तो मेरा सिर खराब रक्खा है। तुम लोगोंने अबतक जो किया सो अच्छा ही किया, अब मैं नाटकमण्डली तोड़ डालूँगा; तुम मेरे यहाँसे चले जाओ।"

हरिका चेहरा अपमानसे लाल हो गया। वह तत्काल ही बाहर चला गया। विश्वेश्वर चलनेको तैयार हो, उठते समय बोले, "नरेन्द्र बाबू, अब मैं चला। और अधिक क्या कहूँ? जिस सतीका तुमने नाश किया है वह कमलाकी बड़ी अभिन्नहृदया सखी थी। इसलिए यदि तुम सतीसे क्षमा पाना चाहते हो, तो, उसकी प्यारी सखी कमलाको सुखी करो।"

इसके बाद विश्वेश्वरने बाहर आकर हरिसे पूछा, "कहाँ जाते हो हरि?"

अब और कहाँ जाऊँगा? अब बड़े आदमियोंके आश्रयमें नहीं रहना चाहता। इनकी नाटकमण्डलीके लिए मैंने सब कुछ किया; परन्तु आज इन्होंने मुझे अपमानित करके निकाल दिया। अब मैं घर जाऊँगा और माँसे भेंट करके जहाँ जीमें आयगा, चला जाऊँगा।"

"नहीं—तुम्हें इस तरह मारे मारे न फिरना पड़ेगा। माँको सुखी करो, तुम इस गाँवमें आदमी बनकर रह सकते हो। अब अमीरोंकी मुसाहबी छोड़ दो और भले आदमीकी तरह कामधन्धा करो—तुम्हारी सहायताको अनेक लोग खड़े हो जायँगे।"

पन्द्रहवाँ परिच्छेद।



धीरे धीरे रामशंकरके पुराने मकानकी मरम्मत हो गई। जबसे इसका जन्म हुआ है तबसे अब तक इसके शरीरपर केवल एक ही बार, और सो भी रामशंकरके पिताके समय, चूना लगाया गया था!—उसके बाद उसके जीवित रहनेके लिए कोई उपाय नहीं किया गया था। इसी लिए इस समय बहुत दिनोंका भूखा मकान बहुतसा माल मसाला निगल गया! जाह्नवीने विश्वेश्वरको मरम्मत करनेसे मना किया, जिससे वे चुप हो रहे; परन्तु अन्नपूर्णाने कहा कि "यदि मरम्मत नहीं कराना चाहती हो, तो फिर इस मकानमें मत रहो। न जाने किस दिन यह अरराकर गिर पड़ेगा। चलो उस मकानमें (विश्वेश्वरके घर) ही सब रहेंगे।" यह सुनकर जाह्नवीको चुप हो जाना पड़ा और लाचार होकर मरम्मत करानेकी सम्मति देनी पड़ी।

भट्टाचार्य्यजीके घरवालोंका भाग्य चमका देखकर पुरा-बस्तीके लोग मन-ही-मन जलने लगे। उनका घर-द्वार नया हो गया, दिन भी

अच्छी तरह कटने लगे, हरिशंकर सुधर गया और जी लगाकर विश्वेश्वरके कामकाजको करने लगा, ये सब क्या काम अफसोसकी बातें हैं? जाह्नवीके हृदयपर चोट पहुँचानेका—उसपर ताने कसनेका—एक यही द्वार था कि हरिशंकरके चालचलनके विषयमें कुछ कहना–सुनना; परन्तु अब वह भी न रहा। हाँ, एक द्वार रह गया—सतीके विषयमें बुरी भली चर्चा करना या सावित्रीके सम्बन्धमें कोई अपवाद खड़ा करना। कोई कहता—" जान पड़ता है विश्वेश्वर ही भट्टाचार्यका दामाद बनेगा, इसीसे तो उसका इस तरफ इतना झुकाव हो रहा है!" दूसरा कोई आँखें मटकाकर कहता—"गाजे बाजेके साथ दामाद होना ही अच्छा, छुपछुपाकर दामाद बननेमें तो बड़ी झंझटें हैं!" लेकिन जब सबने सुना कि विश्वेश्वर सावित्रीके लिए वरकी तलाश कर रहे हैं और अबके आषाढ़में ही उसका ब्याह होना निश्चित हो चुका है, तब तो सबकी आशापर पानी फिर गया—सब लोग मन मसोसकर रह गये।

विश्वेश्वरका मन कुछ उत्साहहीन हो रहा था, इसलिए अन्नपूर्णाने उसको उत्तेजित करते हुए कहा—"बेटा, अब देरी मत करो। देखते ही देखते लड़की पन्द्रह वर्षकी हो गई। बेचारी जाह्नवी यद्यपि कुछ कहती नहीं है; परन्तु मन-ही-मन बड़ा दुख पा रही है। वरकी तलाशके लिए अच्छी तरह कोशिश करो।"

"मौसी! मैं क्या वरके लिए कोशिश नहीं करता हूँ? अच्छा वर भी तो चाहिए। बड़ी ढूँढ़-खोजके बाद आज एक जगहसे एक चिट्ठी आई है। वर खूब पढ़ा लिखा है, दो तीन परीक्षायें पास है, घर भी अच्छा है, अवस्था भी अच्छी है। वरका पिता भी है। क्यों मौसी, यह वर ठीक है या नहीं?"

" सुननेसे तो अच्छा ही माल्रुम होता है, लेकिन खूब जाँच पड़-ताल कर लो जिसमें पीछे पछताना न पड़े।"

" पछताना नहीं पड़ेगा इससे तुम निश्चिन्त रहो।"

" हाँ, तो तिलक–दहेज कितना देना होगा?"

विश्वेश्वरने हँसकर कहा, "ऐसा पात्र क्या तुम मुफ्तमें चाहती हो?" रुपया तो देने ही पड़ेंगे; परन्तु इसके लिए तुम फिक्र न करो—ब्याहके दिन सुन लेना। हाँ, उस वक्त तुम सिर्फ अपना रुपयोंवाला सन्दूक मेरे हवाले कर देना!"

मौसीने क्रुद्ध होकर कहा, " जा, हट, तू तो सब काममें लड़कपन ही करता रहता है। लेकिन देखना कहीं यह असाढ़ न टल जाय!"

रामधनकी माँ अन्नपूर्णाके पास ही बैठी थी। वह अपना काम छोड़कर बोली, " क्यों माँजी, और तुम्हारे विशू बाबूका ब्याह कब होगा? क्या ये ब्याह करेंगे ही नहीं?"

मौसीने पहले विश्वेश्वरकी ओर देखा और फिर नीचेकी ओर सिर झुकाकर कहा, " मैं क्या जानूँ? यह विश्वेश्वर जाने या परमेश्वर जाने।"

रामधनकी माँ बोली, " बापरे बाप! इतने बड़े हो गये, ब्याह नहीं करते। बड़े आदमियोंकी लीला ही कुछ निराली होती है।"

ऐसे मौकेपर विश्वेश्वर रामधनकी माँकी हँसी उड़ाये बिना न रहते; पर वे अपनी मौसीकी कातर दृष्टि देखकर चुप हो रहे। पहले ब्याहके विषयमें मौसीके किसी करुणासूचक वाक्य या दृष्टिसे उनका मन नहीं डिगता था, किन्तु अबके उन्होंने देखा कि उनका मन अतिशय कोमल हो गया है। मौसीकी वेदनाका अनुभव करके आज उनके प्राण व्याकुल होने लगे। उन्होंने सोचा कि महज एक खया-

लके पीछे मैं अपनी माताके समान स्नेहशीला मौसीके अन्तःकरणमें गहरी चोट पहुँचाता रहता हूँ और इस खयालसे मुझे भी कोई विशेष सुख नहीं होता है—मौसीको दुःख होता है यह जान मेरा मन भी समय समयपर दुःखका अनुभव करता है। और मेरी उस पहलेकी नासमझीका परिणाम भी कैसा भयंकर हुआ! सहसा विश्वेश्वरकी समझमें यह बात आ गई कि संसार जिस नियमसे चलता है, उसके साथ उसी नियमसे चलना होगा, बालके बराबर भी इधर उधर होनेसे इस चक्कीमें पिस जाना पड़ेगा।

लेकिन अब यह समझ होनेसे ही क्या हो सकता है! जो पाँसा हाथसे फेंका जा चुका वह लौटकर हाथमें थोड़े आ सकता है! अब उसी पाँसेकी चालसे चलना-फिरना, उठना-बैठना होगा। जो चाल चली जा चुकी वह बदल नहीं सकती। अब छटपटानेसे कोई लाभ नहीं है। इसी समय विश्वेश्वरको सतीका शाप याद आ गया। उस पत्रका प्रत्येक अक्षर उनके हृदयमें खुदा हुआ है। "तुम एक स्त्रीको पत्नी बनाओगे, प्यार करोगे और सुखी होकर समझोगे कि संसारमें स्नेहके आदान-प्रदानमें ही श्रेष्ठ सुख है।" यही उसका शाप है। पर नहीं, मैं ऐसा कभी न करूँगा। सतीके इस शापको कभी सफल न होने दूँगा। संसारमें चाहे जितनी अशान्ति खड़ी हो जाय, चाहे जितना कष्ट भोगना पड़े, पर अपनी यह प्रतिज्ञा अटल रखनी होगी, जिससे सती परलोकमें भी मेरी दुर्बलताको लक्ष्य करके व्यंग-भरी तीव्र हँसी न हँसे। उसका शाप व्यर्थ करना ही होगा।

कुछ ही दिनोंके भीतर वरपक्षके साथ सब बातचीत पक्की हो गई। अन्नपूर्णाने कहा, "अब देर करनेका काम नहीं है। बस, इसी असाढ़ सुदी नवमीको अच्छी सायत है, यही दिन कठी करो।"

विश्वेश्वरने कहा, "मौसी, आज दोयज है—कुल सात ही दिन और बाकी हैं। इतने समयमें सब प्रबन्ध हो जायगा?"

"हाँ अच्छी तरह हो जायगा। मैं जो जो कहूँ सो तू ला-लाकर देना आरम्भ कर दे; आलस्य मत कर—फिर देख सब काम हो जाता है या नहीं।"

विश्वेश्वर कमर कसकर तैयार हो गये। भट्टाचार्यजीके घरके बाहरी भागमें एक बड़ासा कमरा बैठकके कामके लिए तैयार कराया गया। भीतरका आँगन साफ हो गया और वहाँ भी तीन चार कमरे बनाये गये। आँगनमें बाँस गाड़े गये और वर्षाके बचावके लिए शामियाना खड़ा कर दिया गया। अन्नपूर्णा साक्षात् अन्नपूर्णाके समान भाण्डार सजाने लगीं। जाह्नवी काठकी पुतलीकी तरह चुपचाप देखा करतीं और अन्नपूर्णा जो आज्ञा देतीं केवल उसीका पालन करती रहती थीं। बहुत रो-धोकर सावित्रीने अपने तुलसी-चौंतरेकी रक्षा की थी। वह उसपर दिया जलाकर और माँ भाइयोंको ठीक वक्तपर खिला पिलाकर अन्नपूर्णाके साथ साथ बड़ी रात तक अपनी ब्याहकी तैयारीके लिए काम काज किया करती थी। अड़ोस-पड़ोसकी बहू बेटियाँ इसपर उसीकी हँसी उड़ातीं थीं, परन्तु वह ऐसी बातोंपर कुछ ध्यान ही न देती थी। अब घरमें आदमियोंकी कमी नहीं है, बहुत लोग कामकाजमें लग रहे हैं। आसपासके लोग भी आ आकर हालचाल पूछते हैं। कोई आता है, कोई जाता है। इसी प्रकार सभी लोग अपनपौ दिखला रहे हैं। जेठानीजी भी अपनी बहिनके बेटेके यहाँसे चली आई हैं।

नियमित तिथिको सावित्रीकी देहमें हल्दी लगी। अब ब्याहका केवल एक ही दिन बाकी रह गया। पास-पड़ोसिनें बड़े प्यारसे सावित्रीका

कुँअरथका भात* खिलाने आई। फिर अन्नपूर्णा उसे अपने यहाँ ले गई और वहीं दोनोंने मिल-जुलकर रसोई बनाई। विश्वेश्वरने आश्चर्यके साथ पूछा, "मौसी, आज तुम दोनों इस घरमें क्या करने आई हो?"

अन्नपूर्णाने हँसकर कहा, "आज मैं भी सावित्रीको कुँअरथका भात खिलाऊँगी। जरा देख तो सही, बनारसी साड़ी और कानोंमें झूमके पहनने पर सावित्री कैसी दीखती है!"

विश्वेश्वरने निहारकर देखा कि यह तो बड़ा बेमेल शृंगार है। इसकी अपेक्षा तो वही रूखे बाल, मलिन और फटे हुए कपड़े कहीं अच्छे दीखते हैं। यह तो विलासिताके बीच खड़ी कीगई, अपने आपमें तन्मय हुई एक उदासिनीकी मूर्ति है! न जाने क्या सोचते सोचते वे अपने कमरेमें चले गये।

जब भोजन तैयार हो चुका, तब विश्वेश्वरकी पुकार हुई। आहारके लिए बैठनेपर मौसीने कहा, "सावित्रीने अपने कुँअरथका भात आप ही बनाया है। ऐसी पगली लड़की भी मैंने नहीं देखी। बेटा! रसोई कैसी बनी है?"

"बहुत अच्छी।" यह कहकर और भोजन समाप्त करके विश्वेश्वर चुपचाप चले गये। मौसीने सावित्रीको खिलापिलाकर कहा, "बेटी! तुम जाकर थोड़ा सा आराम कर लो। तब तक मैं भी कुछ खा पीकर निबट आती हूँ।"

सावित्री हाथमें पंखा लेकर अन्नपूर्णाकी थालीके पास बैठ गई। यह देख मौसीने व्यग्रताके साथ कहा, "बेटी, आज यह सब रहने दो। तुम जाकर सो रहो। मैं तुम्हें अकेली न जाने दूँगी। पर मुझे भी अब

---

* ब्याहके एक दिन पहले दुलहिन कुमारी बालिकाओंके साथ बैठकर भोजन करती है। यह एक रस्म है। —अनुवादक।

अधिक देर न लगेगा। बेटी! तुम जाओ।" लाचार होकर सावित्री उठ गई। अन्नपूर्णाके कमरेमें जाकर उसने पहने हुए वस्त्रोंको उतार दिया और अपने मामूली कपड़े पहन लिये। कानोंके ईअर-रिंग (कर्ण-भूषण) निकाल कर तकिये पर रख दिये। इसके बाद कोई दूसरा काम न होनेके कारण मौसीकी शय्याके पास पड़ी हुई महाभारतकी पोथी लेकर उसने पढ़नेके लिए ज्यों ही सिर उठाया त्यों ही देखा कि सामने विश्वेश्वर खड़े हैं।

विश्वेश्वर निकट आ गये और शय्याके एक छोरपर बैठकर बोले, "क्या देखती थीं? महाभारत?"

उस समय सावित्री शय्यासे कुछ दूर हटकर खड़ी थी। उसने सिर हिलाकर कहा, "हाँ।"

"सावित्री! मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ। बतलाओगी?"

सावित्रीने बिना कुछ बोले ही फिर सिर हिला दिया और उन्हें जता दिया कि 'हाँ, बतलाऊँगी।'

"देखो, लजाना नहीं। मुझसे लजानेका कोई काम नहीं है। मैंने जो पात्र तुम्हारे लिए चुना है वह मेरी समझमें बहुत ही अच्छा है। पर मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि इस विषयमें तुम्हारी तो असम्मति नहीं है?"

सावित्रीने सिर नवा लिया और अपनी दृष्टि जमीनमें गड़ा ली।

विश्वेश्वरने फिर कहा, "कहो, यदि तुम्हारी असम्मति हो, तो अभी इस विषयमें मैं और भी सोच विचार कर सकता हूँ। बोलो, तुम्हारी असम्मति है?"

अबके वह मृदु स्वरसे बोली, "मेरी असम्मति? यह बात आप क्यों पूछते हैं?"

"न मालूम क्यों मेरे जीमें आया कि तुमसे पूछ दूँ। मेरा विश्वास है कि इस सम्बन्धसे तुम्हें बहुत सुख होगा। बोलो, होगा कि नहीं?"

"यह आप मुझसे क्यों पूछते हैं? आप जब कहते हैं तब वह निश्चय ही होगा।"

"मेरा कहना न कहना क्या? तुम्हें भी ऐसा ही विश्वास होता है कि नहीं?"

"हाँ! आपने ही जब सब कुछ किया है तब यह निश्चय है कि मेरी भलाईहीके लिए किया है।"

"सचमुच यही बात है। सावित्री! तुम्हारी भलाई कैसे होगी, मैं यही सोचता रहता हूँ—यही–"

सावित्रीने बात काटकर कहा, "सो मैं जानती हूँ। आप मनुष्य नहीं देवता हैं।" यह कहते कहते सावित्रीने घुटने टेककर विश्वेश्वरको प्रणाम कर लिया। विश्वेश्वर लज्जित होकर, "यह क्या करती हो, सावित्री!" कहते हुए, उठ खड़े हुए और गंभीर मुख किये बोले, "मुझे तुम नहीं पहचानती हो, इसी लिए तुम वैसा समझती हो; परन्तु तुम जैसा समझती हो मैं उससे ठीक उलटा हूँ। मैं देवता नहीं–बड़ा ही दुर्बल मनुष्य हूँ।" यह कहते कहते विश्वेश्वरके मुँहपर फीकी हँसी झलक आई। इससे कुछ ही समय पीछे उन्होंने सिर नवाये खड़ी हुई सावित्रीसे कहा—"सावित्री, तुम मुझसे कुछ कहोगी? अगर कुछ कहना हो तो कहो।"

सावित्रीने उनकी ओर देखा और फिर नीचेकी ओर दृष्टि कर ली। इसके बाद मृदु कण्ठसे कहा "मैं आपसे एक बात पूछना चाहती हूँ। ब्याहके बाद क्या वे लोग मुझे ले भी जायँगे?"

"हाँ, ले तो जरूर ही जायँगे। पर यह बात तुम पूछती क्यों हो? सभी स्त्रियोंको पतिके घर जाना पड़ता है।"

" इसलिए पूछती हूँ कि मेरे चले जानेपर माँके पास कौन रहेगा? जीजी नहीं है, मैं भी नहीं रहूँगी, तो माँ और कालीको कौन देखेगा? क्या आप ब्याहके बाद कमसे कम थोड़े दिनके लिए भी मुझे यहाँ नहीं रहने दे सकते हैं? "

विश्वेश्वरको हँसी आ गई। माल्लूम होता है यह हँसी उन्हें कुछ तो सावित्रीकी लज्जाहीनतापर आई और कुछ अफ़सोससे भी आई। वे हँसकर बोले, " यह कैसे हो सकता है सावित्री? कहीं ऐसा भी अनुरोध किया जाता है? "

सावित्री तनिक सोचमें पड़ गई। उसने एक हलकी साँस लेकर कहा, " अच्छा तब जाने दीजिए। आप तो यहाँ रहते ही हैं और भैया भी अब माँकी बात सुनते हैं। इसलिए अब मेरा यह कहना एक तरहसे व्यर्थ ही है कि माताको कोई कष्ट न होने देना। "

विश्वेश्वरने फिर हँसकर पूछा, " सावित्री, ब्याहकी बात करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं माल्लूम होती? "

सावित्रीने गर्दन हिलाकर कहा " ना। "

विश्वेश्वरने फिर पूछा, "सब स्त्रियाँ लजाती हैं तुम क्यों नहीं लजातीं?"

" विशू भैया, जो लजातीं हैं वे क्या मेरी ही तरह चिन्तासे आत्मीय बन्धुओंके हृदयका रक्त सुखाया करती हैं और सब किसीके लिए बोझा और चिन्ताकी मूर्ति बनी रहती हैं? "

" ऐसी बात मत कहो, सावित्री! तुम क्या हम लोगोंके लिए बोझा हो? "

" नहीं कैसे हूँ? आप लोगोंको मेरे लिए क्या कम कष्ट हुआ है? कम दौड़ धूप, कम कोशिशें करनी पड़ी हैं? "

"इसे तो मैं कष्ट नहीं समझता। सावित्री, मुझे केवल यही चिन्ता है कि तुम्हें सुखी कैसे करूँ? तुम्हीं लोगोंका सुख देखकर मुझे सुख होगा। मैंने जो वर ठीक किया है, वह यदि तुम्हें किसी भी कारणसे पसन्द न होगा तो मैं इसी समय सम्बन्ध तोड़ दूँगा और इससे अच्छा वर ढूँढूँगा। कहो, क्या इसमें तुम्हारी असम्मति है?"

"आप अपने मनमें ऐसा भाव रंचमात्र भी न आने दें। आप लोग जिसे सबसे बुरा समझते हैं उस आदमीके साथ भी यदि मेरा ब्याह कर देंगे, तो आप निश्चय जान रखिए कि मैं उससे सुखी होऊँगी। मैं तब भी समझूँगी कि आप देवता हैं, आपने मेरी माँको बड़े भारी फन्दसे (कन्यादायसे) मुक्त किया। मेरी बहिन हम लोगोंको आपहीके हाथमें सौंप गई है।"

सावित्री भक्तिभरे हृदयसे, सिर नवाये चली गई। विश्वेश्वर अपनेको भूल गये और चकित स्तंभित होकर मन-ही-मन कहने लगे—"ये स्वर्गकी देवियाँ इस मर्त्यधाममें क्यों आई हैं? क्या केवल दुःख भोगनेके ही लिए इनका आना हुआ है? क्या संसारके पत्थरकेसे चरणोंपर सिर पटककर प्राण देनेहीके लिए इनका अवतार हुआ है? नहीं, ऐसा कहना उस सिरजनहारका अपमान करना है। सतीका आशीर्वाद सावित्रीके माथेपर बरसा है, इसलिए वह अवश्य ही सुखी होगी।"

विश्वेश्वर फिर ब्याह-घर गये और कमर बाँधकर काम करने लगे। वहाँसे बड़ी रात गये लौटे और अपने घर आकर सो रहे। दूसरे दिन तीसरे पहर वर और बाराती लोग आ-पहुँचे। विश्वेश्वरने बारातके ठहरनेके लिए पहलेहीसे स्थान ठीक कर रक्खा था। सारे बाराती वहाँ आदरके साथ ठहराये गये। वरकी सुन्दर मूर्ति देखकर विश्वेश्व-

रका हृदय शीतल हो गया, किन्तु वरके पिताका लालची स्वभाव और बेहद स्वार्थीपन देखकर उन्हें खेद हुआ। जो हो, आदर स्वागत करते, खिलाते पिलाते और थोड़ी झपकी मारते ही रात पूरी हो गई। दूसरे दिन विश्वेश्वर बड़े सबेरे दोनों हाथोंसे आँखें मलते हुए ब्याहके घर जा पहुँचे। उस समय शहनाईवाला सबेरेकी तान छेड़ रहा था।

सावित्री तुलसी-चौंतरेके पास गई और प्रणाम करके उठ खड़ी हुई। उस समय घरका कोई आदमी नहीं उठा था। विश्वेश्वरको दिल्लगी करनेकी इच्छा हुई कि आज सावित्रीकी ही नींद इतने सबेरे क्यों खुली, पर उनके मुँहसे बोली नहीं निकली। उस अचञ्चला, स्थिरमूर्ति उदासीनाकी ओर देखते ही रह जाना पड़ता है, मुँहसे बोल नहीं आता। न जाने वह योगिनी किस योगमें निमग्न है! बाहरकी चहल-पहल उसके कानोंतक नहीं पहुँच पाती! नहीं जानते, वह देवी किस आराध्य देवताके ध्यानमें डूबी हुई है!

सोलहवाँ परिच्छेद।

साँझ हो आई है। घर आदमियोंकी भीड़से भर गया है। चारों ओर चहल-पहल मची है। गाँवके सभी लोगोंको निमंत्रण दिया गया है, सब लोग आ-आकर कुछ न कुछ काम कर रहे हैं। साँझ होते ही चारों ओर रोशनी की गई। पहले ही पहरकी लग्न है। अकेले विश्वेश्वर चारों ओरकी देख भाल करनेमें लगे हैं। भीतर अन्नपूर्णाका राज्य है। आज जाह्नवी सबकी आँखोंकी ओट हो गई हैं। जहाँ सती मरी थी वहीं जाकर वे चुपचाप सोई हुई हैं। कुछ देर बाद सावित्री उनके पास जाकर बैठ गई। वह दुलहिनका पहनावा पहने हुई थी और माथेमें कन्यापत्रिका (पट्टी) बाँधे थी।

जाह्नवी घबड़ाई हुई सी उठ बैठीं और भरे हुए गलेसे बोलीं, "बेटी, तू यहाँ क्यों आई? इस समय तो चौकीके ऊपर बैठना पड़ता है। जा बेटी, जा।"

"जाती हूँ माँ, थोड़ी देर तुम्हारे पास बैठ लूँ।"

"नहीं नहीं, चली जाओ। अन्नपूर्णा बहिन कहाँ गई?"

सावित्रीको चौकीपर नहीं देखकर अन्नपूर्णा दौड़ी हुई आई और जाह्नवीपर अप्रसन्न होने लगीं। तब जाह्नवी कन्याको लेकर चलीं और उसे उन्होंने ब्याहके पीढ़ेपर बैठा दिया। उस समय विश्वेश्वर अन्नपूर्णासे वरका जामा-जोड़ा, हीरेकी अँगूठी आदि लेनेके लिए आये थे और द्वारके निकट खड़े थे। बाहर बाजोंका तुमुल कोलाहल और स्त्रियोंकी मंगल-ध्वनि होने लगी। इसी समय एक भले मानसने आकर कहा, "ओह! आप तो बहुत लड़कपन करते हैं। ये सब चीजें तो पीछे भी ली जा सकती हैं। इधर आइए, इधर।" "अच्छा चलता हूँ," यह कहकर विश्वेश्वरने भीतरकी ओर देखा। उस समय सावित्रीका मुँह वस्त्रसे और सेहरेसे ढँक रहा था। आखिर विश्वेश्वर सभाकी ओर चले। न जानें किस अज्ञात भयसे उस समय उनके पैर काँप रहे थे।

वर सभामें आ पहुँचा। वरपक्ष और कन्यापक्षमें वादानुवाद, तर्क-वितर्क, हँसी-दिल्लगी और शास्त्रार्थ होने लगे। वर चुपचाप था। विश्वेश्वर आकर, एक ओर खड़े हो गये। उन्होंने एक बार वरके मुँहकी ओर देखा। एक ओर समधी साहब मुँह लटकाये लोगोंसे कह रहे थे कि बहुत कम दहेज लेकर हमने यह शादी की है और इसके लिए पश्चात्ताप कर रहे थे। इसपर गाँवके परोपकारी लोग उन्हें बहुत कुछ समझा-बुझाकर अनेक प्रकारकी आशायें दे रहे थे।

नाईने आकर कहा, "बाबू, अब देरी क्यों कर रहे हो? भीतर सब तैयारी हो चुकी।" विश्वेश्वरने हरिको बुलाकर समझा दिया कि उसको क्या कहना पड़ेगा। तदनुसार हरिने हाथ जोड़कर कहा, "आप लोग वरको मण्डपमें चलने दें, और आज्ञा दें कि कन्यादान किया जाय।"

लोगोंके "हाँ, हाँ, अवश्य" कहनेके साथ ही समधी महाशय ढोलकी तरह गर्जकर बोले, "पहले दहेजका रुपया ले आइए, तब यह सब होगा।"

"लीजिए—गिन लीजिए। अब तो वरको मण्डपमें ले जा सकते हैं?"

समधीने रुपये गिनते गिनते बाँयें हाथसे वरको ले जानेका निषेध किया। विश्वेश्वर और हरि मन-ही-मन कुढ़कर चुपचाप खड़े रहे।

रुपये गिनकर महिषासुरस्वरूप समधी साहब बोले, "हाँ, ये तो तीन हजार हो गये, अब वर और कन्याके गहने दिखलाइए। अन्तमें टण्टा हो, सो मैं नहीं चाहता। कन्याको यहीं ले आइए न!"

विश्वेश्वरने तनिक क्रोधित होकर कहा, "आप हम लोगोंको ऐसा छोटा आदमी न समझें। कन्या यहाँ नहीं लाई जा सकती। यह कहाँकी चाल है? भीतर चलिए, वहीं चलकर देख लीजिएगा।"

"इसमें खिसियानेकी कौनसी बात है? यह तो देने-लेनेकी बात है। आहार-व्यवहारमें सफाई ही रहना ठीक है। कन्याको यहाँ बुला लानेमें हर्ज ही क्या है? हमारे देशमें तो ऐसी ही प्रथा है।" बहुतोंने सिर हिलाकर समधीजीकी बातका अनुमोदन कर दिया।

विश्वेश्वरने स्थिरकण्ठसे कहा, "आपके देशकी चाल यहाँ नहीं चल सकती। कन्या यहाँ कदापि नहीं आ सकती।" लाचार हो जो 'जी हाँ हुजूर' वहाँ बैठे थे, समधीजीको चुप करते हुए बोले, "रुपये रख

लीजिए। झगड़ा करनेसे क्या फायदा? भीतर ही चले चलिए, वहीं जो देखना सुनना हो, देख सुन लीजिएगा।"

निदान वर, समधी और दोनों ओरके कुछ लोग भीतर मण्डपमें पहुँचे। वरके कपड़े गहने आदि देखकर समधी साहबने गधेकी तरह रेंकते हुए फर्माया, "यह तो हुआ, अब कन्याको लाइए, कन्याको।"

भीतरसे स्त्रियोंने पुकार मचाई कि "पहले स्त्रियोंकी रीति-रस्म हो लेगी, तब कन्यादान होगा।"

यह सुनकर हरिने झुँझलाते हुए कहा, "रहने दो अपनी रीति-रस्म, पहले समधीको तो खुश करो। ये ब्याह करने थोड़े आये हैं, रुपया बटोरने चले हैं।"

हरिने सावित्रीको समधीकी आँखके आगे लाकर बैठा दिया। सावित्रीका मुँह घूँघटसे ढँका हुआ था। समधीजीने जब एक एक करके सब अलंकारोंको देख लिया तब उन्हें कुछ संतोष हुआ और वे प्रसन्नता-पूर्वक उठ खड़े हुए। "अच्छा तो अब कन्याको घरके भीतर मत ले जाओ। यहीं बैठाकर जो रीति रस्म हो, करो। हाँ, यह तो मुझे मालूम ही न हुआ कि कन्यापक्षके मालिक कौन हैं।"

हरि विश्वेश्वरकी ओर ताकने लगा। यह देख विश्वेश्वरने हरिको बतलाकर कहा, "ये ही हैं, कन्याके आप ज्येष्ठ भ्राता हैं।"

"अच्छा, ठीक है। हाँ हाँ, आपसे अब एक बात और कहना है। यह भेद आप लोगोंको मुझसे पहले ही कह देना चाहिए था। अगर मैं जानता तो यह सम्बन्ध कदापि नहीं करता। जो हो, और एक हजार रुपया लाइए तो ब्याह होगा। तुम भले आदमी हो, इसलिए मैं तुम्हारी जातिमें बट्टा नहीं लगाना चाहता।"

बीचमें ही विश्वेश्वर बोल उठे, "अब कैसा रुपया ? आप तो बड़े बड़े जाल फैलाना जानते हैं! विवाह करना मंजूर नहीं है क्या ?"

"तुम कौन हो जी ? तीनमें कि तेरहमें ? तुम क्यों बीचमें कूदते हो ? बात कन्या-कर्त्तासे होती है, तुमसे क्या सरोकार ?"

घबराया हुआ हरि बात काटकर बोला, "वे ही कर्त्ता-धर्त्ता हैं महाशय, जो कहना हो उन्हींसे कहिए।"

"मालूम होता है तुम लोग पक्के जालसाज हो! कौन मालिक है इसका भी ठीक ठिकाना नहीं है। जैसा पवित्र कुल है वैसी ही जालसाजी भी है! राम! राम! ऐसे घरमें भी कोई भला मानुस विवाहसम्बन्ध करनेके लिए आयगा ?"

विश्वेश्वरने बड़े कष्टसे मनका क्रोध मनहीमें दबाकर कहा, "कहिए क्या कहते हैं ? मैं ही मालिक हूँ।"

"हाँ, तब इतनी देरतक तुम मुझे धोखेमें क्यों डाले हुए थे ? यह जालसाजी क्यों कर रहे थे ? और हजार रुपये लाओ, नहीं तो शादी नहीं होगी।"

"क्यों ? आपसे जितना करार किया गया था, उतना सब तो आप पा गये।"

"मैं क्या जानता था कि तुम लोगोंका कुल ऐसा पवित्र है! कन्याकी बड़ी बहिन, अच्छे चालचलनकी नहीं थी—सुनते हैं वह विष खाकर मरी है।"

विश्वेश्वर गर्जकर बोले, "चुप रहिए, यह कौन कहता है ? जरा मुँह सँभालकर बातें कीजिए।"

"मुँह क्यों सँभालूँ ? चलो हटो, मैं ब्याह नहीं करता। देखता हूँ कि तुम लोग क्या करते हो! चलो, नरेन्द्र, उठो।"

आज्ञा पाते ही वर वरासनसे उठ खड़ा हुआ। यह देख सब लोग वरको रोकने लगे और कहने लगे, "अजी यह क्या करते हो? कहाँ जाते हो?" किसीने वरके पिताके पास जाकर कहा "महाशय, आप यह क्या करते हैं? आप दम धरिए, मैं सब झगड़ा मिटाये देता हूँ। आप ऐसा काम कदापि न करें।"

"लड़की ब्याहने चले हैं और नवाबी करते हैं! इतनी धमकी देते किसे हैं? देखता हूँ कि कैसे इस लड़कीका ब्याह होता है!"

इतनेमें "आप शान्त हो जाइए, हम सब टण्टा मिटाये देते हैं।" यह कहते हुए दो एक परशुभाकांक्षी लोग आये और काठके पुतलेकी तरह चुपचाप खड़े हुए विश्वेश्वरकी पीठपर हाथ रखकर कहने लगे, "अजी क्यों यह सब गड़बड़ मचाये हुए हो? इतना किया तब थोड़ेके लिए क्यों काम बिगाड़ते हो? एक ही हजार और माँगता है न? देकर छुट्टी करो। तुम इस घड़ी दे दो, न होगा तो ब्याहके बाद हम लोग चन्दा करके तुम्हें यह रुपया दे देंगे। जाओ, रुपये देकर झगड़ा मिटा दो। लग्नवेला बीती जाती है।"

स्त्रियाँ उसारेमें चित्र लिखीसी खड़ी थीं। उनके रीति-रस्म, गीतमंगल सब बन्द हो गये। विश्वेश्वरने देखा, पास ही कोई स्त्री मूर्च्छित सी पड़ी है और अन्नपूर्णा उसकी शुश्रूषा करती हुई ऊँचे स्वरसे पुकारकर कह रही हैं, "आ, आ, इधर आ, रुपये ले जा; लग्न बीती जाती है, देरी मत कर।"

विश्वेश्वर समझ गये कि मूर्छिता स्त्री जाह्नवीके सिवा कोई नहीं है। हरि पास ही खड़ा है और डरा-घबड़ाया हुआ सा उनकी ओर देख रहा है। पलक मारते ही उन्होंने एक बार सावित्रीकी ओर देख लिया। वह वैसे ही घूँघट डाले हुए चुपचाप खड़ी थी। इसके बाद विश्वेश्वरने

दृढ़ताके साथ कहा—" सुनिए, मेरी यह अन्तिम बात है। कन्याकी बहिन देवी तुल्य थी। वह स्वर्ग गई। उसके विषयमें कोई बुरी भली बात कहना पाप है। आपको अब मैं किसी तरह रुपया नहीं दे सकता। आपकी जो इच्छा हो कीजिए।"

सब लोग चारों तरफ़से एक साथ कह उठे, "हैं, यह क्या कहते हो! यह क्या करते हो!"

हरि आर्तकण्ठसे बोला, "विशू भैया! आप यह क्या कह रहे हैं?"

विश्वेश्वरने दृढ़ताके साथ कहा, "हरि तुम चुप रहो। आप लोग निश्चय जानिए कि अब मैं रुपये नहीं देनेका। हाँ, वरसे एक बात और कहता हूँ। आज मैं जो रत्न उन्हें देना चाहता हूँ, उनमें यदि समझ हो तो उसका मूल्य समझें और समझकर देखें कि उनका भाग्य कितना उज्ज्वल है! देखिए तो सही, यह रत्न क्या मोल देकर खरीदा जा सकता है?"

यह कहकर विश्वेश्वर सावित्रीके निकट आये और उसका घूँघट हटाकर तथा उसे वरकी ओर घुमाकर बोले, "देखो, इस रत्नका क्या मूल्य हो सकता है? यह अमूल्य है।"

वर गम्भीर कण्ठसे बोला, "जब पिताजी मौजूद हैं तब मुझसे कुछ कहना सुनना निरर्थक है।"

वरके पिताने कहा, "उठ आओ, बेटा, उठ आओ। इन्हें ब्याह थोड़े ही करना है, धूर्तता दिखलाना है। चलो, हम लोग जाते हैं।"

जो लोग वास्तवमें हिताकांक्षी थे, वे बोले, "विश्वेश्वर! क्या करते हो? अब भी समझ-बूझकर काम करो।"

"मैंने खूब समझ बूझ लिया है।" यह सुनकर जो चतुर चालाक लोग थे, वे पहले वरके पितासे आँखका इशारा करके धीरेसे बोले—

“अब हठ मत कीजिए, यह दाव तो आपका चूक गया। इस समय जो मिला वही यथेष्ट है। समझ-बूझकर पहलेकी शर्तके माफिक ही लेनेको राजी हो जाइए।” और फिर जोरसे बोले, “अच्छा आओ, हम लोगोंने झगड़ा मिटा दिया। महाशय, भले आदमीको जाति-पाँतिके आगे हीन करना, उसकी जात लेना धर्म नहीं; आप ही कुछ घटी सह लीजिए और पहले जो करार हुआ था उसीपर राजी हो जाइए। जाओ हरि, कन्याको पीढ़ेपर बैठाओ और वरको भी बुलाओ। अच्छा विश्वेश्वर, अब तो सब सफाई हो गई न?”

विश्वेश्वर हिले तक नहीं और पत्थरकी तरह अटल भावसे खड़े खड़े अटल कण्ठसे बोले, “अब आप लोग मुझसे कुछ भी न कहें। वरको उठाकर ले जाइए। ऐसी घटनाके बाद भी ऐसे चाण्डालोंके हाथ एक बालिकाको सोंप देनेवाला भी चाण्डाल और महा नीच है। आप लोग चले जाइए। अब यह ब्याह नहीं होगा।”

सबके होश उड़ गये। यह सभीको माल्रूम था कि विश्वेश्वर जो कहते हैं वही करते हैं। वरपक्षके लोग अपनेको बहुत ही अपमानित समझकर घरके बाहर जाने लगे। हिताकांक्षी रामतनु बोले, “विश्वेश्वर, तुमने यह क्या किया? अब भी कहो तो लौटा लाऊँ? नहीं तो इस ब्राह्मणकन्याकी जाति गई।”

“जाति क्यों जायगी? दूसरे पात्रके साथ ब्याह किया जायगा।”

“दूसरा पात्र कहाँ है? इतनी रातको पात्र कहाँसे ढूँढ़ लाओगे?”

“खोजनेके लिए बहुत दूर नहीं जाना होगा। पात्र निकट ही है। न्यौते हुए लोगोंकी खातिरदारीका भार मैंने आपको दिया। जाकर सब देखिए सुनिए। निर्मल! हरिहर! तुम लोग भी जाओ। मैं ही वर बनकर बैठता हूँ।”

अगर सहसा वज्र गिर पड़ता तो भी किसीको इतना आश्चर्य नहीं होता, जितना आश्चर्य विश्वेश्वरके इन शब्दोंको सुनकर हुआ। गाँवके लोगोंके आनन्दमें व्याघात पड़ गया! वे इधर उधरसे आकर इकट्ठे होने लगे और 'क्या हुआ' 'क्या हुआ' का शोर मचाने लगे।

विश्वेश्वरने कहा, "हुआ क्या? कुछ भी नहीं। मेरे पिता नहीं हैं, इस लिए लाचार मुझे ही आप लोगोंकी आदर-अभ्यर्थना करनी पड़ती है। आप लोग इस शुभकार्य्यमें, मेरी सहायता कीजिए।" कुछ देरके लिए सन्नाटा खिंच गया। इसके बाद दो एक प्रतिष्ठित पुरुष आगे आकर विश्वेश्वरको साधुवाद देने लगे, तब विश्वेश्वर सबको प्रणाम करके मौसीकी ओर चले और दूरसे ही पुकार कर बोले—"मौसी!"

अन्नपूर्णाने तत्काल ही भीड़से बाहर निकल कर विश्वेश्वरको छोटेसे बच्चेकी भाँति हृदयसे लगा लिया और उसका मस्तक चूम लिया। इसके बाद वे दोनों हाथोंसे उनके सिरपर स्नेहाशिषें बरसाने लगीं। वहाँसे विश्वेश्वर जाह्नवीके पास गये और उनको प्रणाम करके मण्डपमें आ पहुँचे। रामतनु महाशय वहीं खड़े हुए थे, उनसे विश्वेश्वर बोले—"अब आप लोगोंपर सारा भार रहा, मैं तो बैठता हूँ।"

"हाँ, हाँ, इसकी फिक्र मत करो। हम लोग सब काम कर लेंगे। तुम्हें जो अच्छा जँचे वही करो।"

विश्वेश्वरने वरका जामा जोड़ा उठाकर चुप-चाप पहन लिया और वे वरासनपर जा बैठे। पुरोहित बोले, "नहीं, पहले स्त्रियोंको अपनी रीति-रस्म कर लेने दो, इसके बाद कन्यादान होगा।"

विश्वेश्वर किंकर्त्तव्यविमूढसे हो रहे। तब कुछ निरुद्यमी युवकोंने उत्साहित होकर उन्हें देहलीपर ले जाकर खड़ा कर दिया। वे वहाँ

खड़े हुए ही थे कि स्त्रियोंने मंगलध्वनि करते हुए उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। बस फिर क्या था, कोई उनके कान गर्माने लगी, कोई नाक मलने लगी! यह देख कई नव युवकोंने ताना मारा कि "वर बन जानेहीसे छुट्टी नहीं मिल जाती है, बड़ी बड़ी आफतें भोगनी पड़ती हैं!"

जब सब रस्में हो चुकीं तब हरिने कन्या-सम्प्रदान किया। विश्वेश्वरने कन्याका हाथ लेकर चुपकेसे हरिको इशारा किया। वे बड़ी देरसे देख रहे थे कि सावित्री मूर्च्छितासी हो रही है, तनिक हिलती डोलती भी नहीं। हरिने सावित्रीकी हालत देखी और तब घबड़ाकर पूछा, "अब क्या किया जाय? क्या उपाय करूँ?"

पुरोहितने पूछा, "क्या हुआ? काहेका उपाय?"

"कन्याकी तबीयत खराब माळ्म होती है।"

"सो तो होनी ही चाहिए। तबीयत खराब न होती तो आश्चर्य होता। यह क्या कोई साधारण घटना है? ऐसे बिकट समयमें बड़े बड़े साहसियोंका धैर्य छूट जाता है। सो यही हुआ न? और तो कुछ नहीं है? खैर, अब देर मत करो, जल्दी मंत्र पढ़ डालो।"

विवाह हो गया। हरिने डरते डरते पुकारा, "भीतरसे कोई एक आदमी इधर आओ न।" तत्काल ही जाह्नवी आई और सावित्रीका सिर अपनी गोदमें लेकर बैठ गई। अन्नपूर्णा चुपचाप पंखेसे हवा करने लगीं और मुहँपर पानी छिड़कने लगीं। कुछ देर बाद सावित्रीको होश आ गया। जाह्नवीने पूछा, "क्यों बेटी! अभी तुझे क्या हो गया था? मैंने तो आज समुद्र उलीचकर डूबा हुआ माणिक पाया है।" दोनों हाथोंसे माताके कण्ठसे लिपटकर सावित्री रो पड़ी और बोली—"माँ! मेरी जीजी कहाँ गई? उसे बुला दो।"

सत्रहवाँ परिच्छेद।



काल धीर धीरे अपने साम्वत्सरिक आवर्तनका आधा रास्ता तै करके अग्रसर होने लगा। प्रति वर्षकी भाँति इस बार भी विश्वेश्वरके मकानके पासवाले बगीचेके पेड़ोंमें खूब मौर लगे हैं। लाल लाल पत्तियों और मौरोंसे वे बहुत ही शोभायमान हो रहे हैं। मधुमक्खियोंको जरा भी फुर्सत नहीं है। सरल उन्नतशीर्ष नारिकेल वृक्ष शीतके हाथसे छुटकारा पाकर हरी हरी शाखा-प्रशाखायें विस्तार-कर नवीन वायुके जोरसे अपना सिर हिला रहे हैं। नारंगीके दोनों पेड़ नववधूकी तरह रक्ताम्बर पहने कोनेमें खड़े हैं। पवन अध-खिली कलियोंसे बड़ी दिल्लगी कर रहा है। उन्हें झूला झुलाता है, नीचे गिराता है और उनकी गन्ध ले-लेकर इधर उधर भागता फिरता है। क्षुद्र बालिकाओंकी भाँति बेला, जूही और मल्लिका अपनी अपनी शोभा-सुगन्धिके मारे हैरान हैं। वे यथासाध्य अपनी सुन्दरताको पवनसे छिपाती हैं और वह उन लोगोंको न देख पावे इसकी शक्ति-भर चेष्टा करती हैं। यह सभी कुछ प्रतिवत्सरकी भाँति है, किन्तु भोरके समय हाथमें पुस्तक लिये, इस पेड़से उस पेड़के नीचे घूमते हुए विश्वेश्वरको ऐसा मालूम हुआ मानों अबकी बार ऋतुका साज बिलकुल ही नया है।

बहुतसे कागज-पत्र हाथमें लिए हुए उनके कारिन्दा निवारणचन्द्र आकर बोले, "आप जरा इन हिसाबोंको देख लेते तो अच्छा होता। मन्दिरके लिए जितनेका तखमीना हुआ था उससे अधिक व्यय होनेके लक्षण दीखते हैं।" विश्वेश्वर हाथमेंकी पुस्तक बन्द करके बोले, "एस्टिमेटसे कुछ ज्यादा तो हुआ ही करता है। अच्छा यह सब घर ही लिये चलिए, वहीं देखूँगा।"

ऐसी मनोहर एवं शृंखलाहीन प्रकृतिके मध्य इन सब सांसारिक बखेड़ोंमें पड़ना उन्हें अच्छा नहीं मालूम हुआ। हाथमें जो काव्य ग्रन्थ था, उसे बेंचके ऊपर रखकर दोनों आदमी हिसाब-किताबवाले कमरेमें गये। विश्वेश्वरने पूछा, " मंदिर तैयार होनेमें और कितने दिन लगेंगे ? "

" लगभग आधा काम हो तो चुका है; जो बाकी है वह भी धीरे धीरे हो रहा है। हाँ, हरिहर कहते थे कि आपने जो हिसाब तैयार करनेके लिए कहा था उसमेंसे बहुतसा तैयार है—देखिएगा ? "

" अच्छा। मौसीने अगले वर्ष संक्रान्तिको मन्दिर और मूर्तिकी प्रतिष्ठा करनेका निश्चय किया है। "

" उसके पहले ही सब काम हो जायगा। "

सब कुछ देख सुनकर विश्वेश्वर स्नान करनेके लिए उठे और घरके भीतर जाकर बोले, " मौसी ! थोड़ा तेल दे जाओ। "

मौसी उस समय रसोई बना रही थीं और बहू पास बैठी हुई हल्दी पीस रही थी। उन्होंने बहूको ही कहा कि " जाकर विशूको तेल दे आओ। "

बहू पहले तो कुछ इधर उधर करती रही, परन्तु फिर और कोई उपाय न था, इसलिए घूँघट काढ़कर और तेल लेकर बाहर हुई। रामधनकी माँ आँगनमें कोई काम कर रही थी, उसकी नजर बचानेके लिए विश्वेश्वर बरामदेमें जाकर खंभेके पास खड़े हो गये। बहूने जरा घूँघट हटाकर देखा कि जिन्होंने तेल माँगा था वे वहाँ नहीं हैं, इस लिए वह तेलका मलिया वहीं रखकर रसोईघरमें लौट आई। मौसीने पूछा, " विशू वहाँपर है ? "

बहूने सिर नीचा किये हुए उत्तर दिया, " नहीं। "

" कहाँ गया ? जाकर देख तो आओ। उसकी जो दशा है उससे तो मुझे मालूम होता है कि वह बिना तेल लगाये ही नहाने चला जायगा। विलम्ब तो उसे जरा भी सहन नहीं होता। क्या तुम इतने दिनोंमें भी उसका स्वभाव नहीं समझ सकीं ? "

लेकिन बहूने उनका स्वभाव मौसीकी अपेक्षा अधिक स्पष्टतासे समझ लिया था, इसी लिए वह कुण्ठित होकर, घूँघट काढ़कर तेलका मलिया लेकर आँगनमें उतरी। वहाँ उसने रामधनकी माँसे धीरेसे पूछा। वह अपने काममें तन्मय हो रही थी, बोली, " मैं क्या जानूँ कहाँ गये। घरके भीतर चले गये होंगे। "

वह आँगन पारकर शयनागारके बरामदेमें पहुँच दो ही एक पग आगे गई थी कि खंभेकी आड़से न जाने किसने उसका अञ्चल खींचा। घबड़ाकर उसने चारों ओर देख लिया कि कोई उसे देखता तो नहीं है। जब मालूम हुआ कि कोई नहीं है, तब तेलका मलिया स्वामीके पैरोंके पास रख बोली, " यह तेल है। "

" सो देखता हूँ, पर एक बड़ी मजेदार बात है, सुनोगी ? "

सावित्रीने विनयपूर्ण नेत्रोंसे घूँघटके भीतरहीसे स्वामीकी ओर देखकर कहा, " अभी काम है, मुझे जाने दो। "

" जाओ न, तुम्हें बुलाने कौन गया था ? और यह इतना सा घूँघट क्यों ? जरा और नीचे लटका लो। " यह कहकर विश्वेश्वरने वधूका घूँघट और भी नीचे सरका दिया। यह देख बेचारी जल्दीसे जान छुड़ा कर भाग गई।

" सुनो, सुनकर जाइयो। अच्छा जाती हो तो जाओ, पर इसका बदला पाओगी। "

विश्वेश्वर नदीसे नहाकर आये और भोजन करनेके लिए बैठ गये। भोजन परोसते समय मौसी इधर उधरकी बातें पूछने लगी, " हरिके

लिए तुम जो लड़की देखने गये थे वह कैसी है? तुम्हारी सासने तुम लोगोंको न्यौता देकर बुलाया है। बहूको मैं दो चार दिनके लिए उसकी माँके पास भेजूँगी। यहाँ बेचारीको कोई अपनी उमरकी संगिन सहेलिन नहीं मिलती, यहाँ हरदम घूँघट डाले मुँह छिपाये रहना पड़ता है। लेकिन वहाँ भी अधिक दिन कैसे रहने दूँगी? मेरा काम कैसे चलेगा? बस तीन ही चार दिनमें बुला लूँगी। हरिहर कहता था कि तुम्हारी दूकानमें बड़ा मुनाफा हो रहा है। क्यों?" विश्वेश्वर उनकी इन सभी बातोंका जवाब "हाँ, हाँ, ठीक है," इत्यादि शब्दोंमें देते आ रहे थे और रह रहकर बीच बीचमें चकित नेत्रोंसे कभी रसोईघरकी ओर, कभी दरवाजेके खुले किवाड़ोंकी तरफ और कभी जीनेकी ओर देख लेते थे। उन्हें आशा थी कि उनका यह कोप-भरा भाव जरूर किसीकी आँखों तले पड़ेगा।

भोजन कर चुकने पर उन्होंने शयनकक्षमें आकर देखा कि सावित्री सेजके पास तिपाईके ऊपर पानी भरा ग्लास, पानका डिब्बा और गमछा रखकर चली गई है। विश्वेश्वरको बड़ा क्रोध हुआ। वे क्रोधके मारे बिना पान खाये ही सो रहे। थोड़ी देरके बाद उन्हें याद आया कि एक दिन मैंने इसी तरह खिसियाकर पान नहीं खाया था, तो सावित्री किस तरह उदास नयनोंसे मेरी ओर देखती रही थी। इस लिए उन्होंने पानके डिब्बेमेंसे दो बीड़े लेकर चाब लिये और सावित्रीको मन-ही-मन चिता दिया कि अबसे ऐसा काम करोगी तो मैं कभी माफ नहीं करूँगा!

लगभग दो घंटे सोये रहनेके बाद, विश्वेश्वर उठे और अपने काम-काजकी देखभालके लिए कपड़ा जूता पहिनकर चल दिये। तब खेलने कूदनेका समय नहीं था, सिर खपानेका काम था; तो भी मौसीके कमरेके पाससे धीरे धीरे चुपचाप जाते हुए वे कान लगाकर सुनते गये कि मौसी सावित्रीसे महाभारत पढ़वाकर सुन रही हैं।

संध्यासे कुछ ही पहले विश्वेश्वर घर लौटे। पूछनेपर मालूम हुआ कि अन्नपूर्णा जाह्नवीके घर गई हैं। उन्होंने सोचा, तब तो इस अवसरको कलहमें बिता देना बड़ी मूर्खताका काम होगा। वे चुपचाप इधर उधर खोजते हुए देव-घरके निकट पहुँचे। वहाँ झाँककर देखा कि सावित्री एक पात्रमें फूल रखकर माला गूँथ रही है। विश्वेश्वरने प्रेमकी उन युगल मूर्तियोंकी ओर—पहले देवीकी प्रतिमाकी ओर और फिर नतवदना सावित्रीकी ओर—देखा। देखा कि चतुर शिल्पीने देवीके मुखपर जो विचित्र प्रेमभरा भाव झलकाया है, सिंहासनके नीचे बैठी हुई मानवीके मुखपर भी उसकी मधुर छाया है। विश्वेश्वरने धीरेसे निकट जाकर पूछा, "यह माला किसके लिए गूँथी जा रही है?"

चौंककर सावित्रीने उनकी ओर देखा और घूँघट सरकाकर कोमल स्वरसे उत्तर दिया, "देवताके लिए।"

"कौनसे देवताके लिए?"

सावित्री सिर उठाकर स्वामीके मुँहकी ओर निहारने लगी। विश्वेश्वर परम गम्भीर होकर बोले, "तुम कितने कितने दिनोंके अन्तरसे अपना देवता बदलती हो? हम देखते हैं कि देवत्व पद देने-लेनेमें तुम्हें बहुत देर नहीं लगती!" सावित्रीने अबकी बार धीरेसे मुसकराकर अपना सिर नीचा कर लिया। विश्वेश्वरकी इच्छा हुई कि उसका मुँह ऊपर उठाकर उस छिपी हुई मुसकराहटको देख लें। वे उसके निकट जाकर बैठ गये और उसके हाथसे आधी गूँथी हुई माला छीनकर बोले, "मैं यों सीधे अपना पद छोड़नेका नहीं; यह माला मेरी है।"

सावित्री अर्द्धशंकित मुखसे बोली, "यह क्या किया? इससे अपराध चढ़ेगा। मौसीजीने तो इसे देवतापर चढ़ानेके लिए—"

"तब पहले ही क्यों नहीं कहा कि किस देवताके लिए है? मालूम होता है कि अब तुममें उन दिनोंकी पण्डिताई नहीं रही।"

सावित्रीने रंग-ढंग अच्छे न देखकर फूलोंका वर्तन चटपट एक ओर सरका दिया। वह देवताके सामने स्वामीका यह अविनय कृत्य देखकर मन-ही-मन कुछ डर गई थी, इस लिए गलेमें अंचल डालकर उसने मूर्तिको जल्दीसे प्रणाम कर लिया। इधर तब तक विश्वेश्वर उस मालाको अच्छी तरह गलेमें पहिन चुके थे। प्रणाम करके सावित्रीने ज्यों ही सिर ऊपर उठाया त्यों ही विश्वेश्वर बोले, इधर एक और देवता चुपचाप बकध्यान लगाये खड़े हैं कि उन्हें भी तुम इसी प्रकार भक्तिपूर्वक प्रणाम करोगी, पर उनका अभाग्य!

सावित्रीने चञ्चल नेत्रोंसे स्वामीके मुखकी ओर देखा। उसके मनमें तरह तरहकी बातें आ रही थीं। उसे ऐसा जान पड़ा मानों सचमुच विश्वके ईश्वर ही उसके सामने खड़े हैं। उसका हृदय भर आया और इसी उच्छ्वासके वेगमें वह ज्यों ही नतजानु हो उन्हें प्रणाम करनेके लिए झुकना चाहती थी, त्यों ही एक सदृढ बाहुपाशने उसे जकड़ लिया! विश्वेश्वर व्यग्रकण्ठसे बोले, "यह क्या! यह क्या करती हो?" लज्जिता सावित्रीने दूसरी ओर मुँह फेरकर कहा, "क्यों! क्या प्रणाम करनेमें कुछ दोष है?"

"दोष तो है ही! इस तरह गुरु-शिष्यकी भाँति केवल नमस्कार और आशीर्वाद करने-करानेमें क्या तुम्हें लज्जा नहीं माल्रम होती?"

"लज्जा क्यों माल्रम होगी? देवताको प्रणाम करनेमें क्या लज्जा होती है?"

विश्वेश्वर टकटकी लगाकर सावित्रीकी ओर देखने लगे। मानों उस दृष्टिमें तिरस्कार, अभिमान और वेदनाके भाव भरे हुए थे। उस दृष्टिको सावित्री नहीं सह सकी; उसने सिर नीचा कर लिया। तब विश्वेश्वर गम्भीर कण्ठसे बोले, "सावित्री! अब भी तुम वैसी ही

बातें करती हो? तुम्हारे मनकी बात मैं अब तक भी न समझ सका। अब भी तुम मुझे इतने दूरका, इतना पराया समझती हो?"

स्वामीके उदासी मिले हुए कण्ठस्वरको सुनकर सावित्रीको बड़ा दुःख हुआ। वह मलिन मुख किये बोली, "इससे क्या पराया समझना हो गया?"

"नहीं क्यों? अवश्य हुआ। तुम मुझे देवता कहती हो, सो बतलाओ देवता किसे कहते हैं?"

"जो अनाथोंको आश्रय दे, दुखियोंका दुख दूर करे और राह राह भीख माँगनेवालोंको सिंहासनपर बैठा दे—।"

यह सुनते ही विश्वेश्वरने सावित्रीको अपने कलेजेसे लगा लिया और धीमे स्वरमें कहा, "और जो प्रेम करता है और केवल प्रेम ही चाहता है उसे मनुष्य कहते हैं? और कोई चाहे जो कहे, कहने दो; पर तुम ऐसा मत कहो। निकट रहकर भी तुमने मुझे नहीं पहचाना सावित्री! इतने समीप रहकर भी क्या हम तुम इतने दूर रहेंगे?"

सावित्रीने अबके स्वामीके हृदयपर अपना सिर रख दिया। उसने कहना चाहा कि तुमने जो कुछ दिया है क्या मैं स्वप्नमें भी उसकी आशा कर सकती थी? आज भी क्या मैं अपनेको तुम्हारे योग्य समझ सकती हूँ? आँधीमें पत्ता जैसे न जाने कहाँका कहाँ उड़कर चला जाता है वैसे ही अब तक हम लोग भी उड़ गये होते, संसारमें कहीं पता नहीं रहता। पर तुमने हम लोगोंको आश्रय दिया है और आशासे भी अधिक अपने चरणोंमें स्थान दिया है—इससे अधिक और कोई बात मत कहो, मुझसे सहा नहीं जाता।

सहसा बाहरसे एक बालकने पुकारा, "छोटी जीजी!"

"काली आया है" यह कहकर सावित्री चटपट चली गई। विश्वेश्वर दूसरे दरवाजेसे निकालकर भागे और अपने कामपर चले गये;

क्योंकि सावित्रीके जाते ही उन्हें माळूम हो गया था कि मौसी आँगनमें आ पहुँची हैं! कुछ देर बाद सावित्रीने अपने शयनगृहमें आकर दिया जलाया। विश्वेश्वर लौटकर आ गये थे। उन्होंने पानका डिब्बा हाथमें ले सावित्रीको दिखलाते हुए कहा—"मेरे और तुम्हारे बीचमें जो झगड़ा है, उसको मैंने इस समय दबाकर रख दिया है; परन्तु तुम यह न समझ लेना कि मैं उसे भूल गया हूँ।" उनकी बात सुनी-अनसुनी करके सावित्री पलक मारते ही भाग गई।

विश्वेश्वर एक पुस्तक लेकर उसके पन्ने उलटने पलटने लगे। वे पढ़ते तो थे नहीं, सिर्फ देखते जाते थे। इस समय उनकी आँखोंमें आनन्दकी रश्मि, प्राणोंमें केवल कल्पनाओंकी क्रीड़ा और शरीरमें पुलकावली छा रही थी। सहसा किताबमेंसे एक पत्र निकल पड़ा। यह वही सतीके हाथका लिखा हुआ पत्र—अन्तिम घोषणापत्र—था। विश्वेश्वर मन-ही मन सारा पत्र पढ़ गये। उन्हें बहुत दिनोंकी बात याद आगई। उस समय सतीकी वे बातें उन्हें दुखाये दिलकी बद-दुआयें (दुराशिषें) माळूम हुई थीं, पर आज वैसी नहीं माळूम हुईं। उन्हें अब ज्ञात हुआ कि किञ्चित् वेदनाक्लिष्ट, पर साथ ही मंगला-कांक्षी, स्नेहपूर्ण हृदयके वे अजस्र आशीर्वाद थे। सतीने लिखा है कि 'इस अधमा नारी जातिको ही तुम पत्नीरूपसे ग्रहण करोगे और प्यार करोगे। तुम उस समय अपने हृदयके पर्दे पर्देमें इस बातका अनु-भव करोगे कि यह अधमा जाति अपने हृदयके भीतर कितना बड़ा समुद्र छिपाये बैठी है। तब तुम्हें स्वीकार करना पड़ेगा कि संसारमें इस स्नेहके आदान-प्रदानमें ही समस्त सुख है।" यह क्या अभिशाप है? यह तो भविष्यद्वक्ताकी दैववाणी है! सचमुच मैं बड़ा मूढ़ था कि इसका मर्म नहीं समझ सका। फिर उन्होंने पढ़ा, "तुम सुखी

होओ और अन्यको सुखी बनाओ।" विश्वेश्वरने अबके उस पत्रको बड़े आदरसे मस्तकपर लगा लिया।

इसके बाद उन्होंने सोचा कि इस पत्रको फाड़कर फेंक देना चाहिए। यदि यह कभी सावित्रीके हाथमें पड़ गया तो बड़ा अनर्थ होगा। इसके पढ़नेसे उसे बहुत दुःख होगा। एक तो वह यों ही अपनी बहिनके लिए रोया करती है, फिर यह पत्र तो आगमें घीका काम करेगा। सावित्रीसे यह बात छिपाते उन्हें बड़ा कष्ट होता था, पर बिना इस भेदको छिपाये कल्याण नहीं था। लाचार उन्होंने वह पत्र उसी समय दीपशिखाको अर्पण कर दिया!

अठारहवाँ परिच्छेद।



अन्नपूर्णा देवीकी इच्छा थी कि साल लगनेपर चैत्रमासमें ही नवीन मन्दिरमें देवताकी प्रतिष्ठा हो जाय। लेकिन नानाप्रकारकी सांसारिक झंझटोंके कारण उस समय प्रतिष्ठा न हो सकी। निदान विश्वेश्वरके विवाहके ठीक दो वर्ष बाद—जिस दिन विवाह हुआ था उसी दिन—मन्दिर और मूर्तिकी प्रतिष्ठाका दिन निश्चित हुआ।

इतनेमें सावित्रीके हृदयपर और भी एक चोट लगी। जाह्नवीदेवी पृथ्वीपर मानों किसी प्रकारसे शान्ति नहीं पाती थीं, इस लिए एक दिन सहसा उनके प्राणपखेरू उड़ गये और उन्होंने सदाके लिए शान्ति पा ली। सावित्री पहले तो बहुत रोई, फिर पीछे सोचा कि अच्छा ही हुआ; माँ जीजीके पास चली गई, वहाँ दोनों जनीं बड़े सुखसे रहेंगी। हम लोगोंको सब प्रकार सुखी देखकर माँ अब अपनी अभागिनी कन्याको सान्त्वना देने गई हैं। यह सोचकर सावित्रीने अपनी आँखें पोंछ डालीं।

हरिशंकरका ब्याह हो गया है, वह अपनी गृहस्थी मजेसे चला रहा है। बालक कालीको बिना बहिनके चैन नहीं, इसलिए वह अधिकतर विश्वेश्वरके यहाँ ही रहता है। अब भट्टाचार्यजीके घरने नये आदमियोंको लेकर नये ही सुख-दुःखके चक्रमें घूमना शुरू किया है।

मन्दिर बनकर तैयार हो गया और अन्नपूर्णादेवीकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा हो गई। उत्सवके मारे गाँवमें हलचलसी मच गई। सब लोगोंने सोचा था कि अन्नपूर्णा अपने रुपयेसे कोई बड़ी भारी अतिथिशाला और सदाव्रत खोलेंगी। विश्वेश्वरने भी पहले यही सोचा था; पर अन्नपूर्णाने कहा, "बेटा! भगवान् किसी न किसी तरह भोजन तो सभीको जुटा देते हैं, इसलिए अपने देशमें भोजनकष्ट कोई बड़ा कष्ट नहीं है; परन्तु जो लोग मनुष्योंके और समाजके अत्याचारोंसे जर्जरित होते हैं; उनके कष्टका पार नहीं है। अतः इस सम्पत्तिसे तुम ऐसा प्रबन्ध करो जिसमें गरीब आदमी कन्या-ऋणसे उद्धार पावें। मुझे और कोई पुण्य नहीं चाहिए, मेरी केवल यही इच्छा है कि मेरे देशकी दुधमुँही बालिकायें माँ-बापकी गरीबीके कारण जन्मभरके लिए धधकती हुई आगमें न पड़ने पावें। अगर मेरे इस सामान्य धनसे एक बालिकाकी भी आँखोंका आँसू पोंछा जा सका तो मैं समझूँगी कि यह सार्थक हो गया।"

विश्वेश्वरने चुपचाप माताकी आज्ञाका पालन किया और उनके दिये हुए धनसे जो फण्ड खोला गया उसका नाम 'अन्नपूर्णा-भाण्डार' रख दिया। अन्नपूर्णाने बहुत कहा कि यह नाम मत रक्खो, पर विश्वेश्वरने इस विषयमें उनकी बातपर ध्यान न दिया।

'अन्नपूर्णाके मन्दिर'में उस दिन बड़ी भीड़-भाड़ थी। वस्त्रदान हो रहा था, विदेशसे आये हुए पण्डितोंको बिदाई दी जा रही थी और इन सब कामोंमें गाँवके लोग जी-जानसे लगे हुए थे। आज सभी लोग विश्वे-

श्वरके बड़े भारी हितैषी और विश्वासपात्र बन रहे थे। सावित्री साक्षात् लक्ष्मीकी तरह, मन्दिरके भीतर आँगनमें भोजन परोसनेमें तन्मय हो रही थी। अन्नपूर्णाने बहुत मना किया, पर उसने एक न सुनी। जब संध्या हो गई, तब अन्नपूर्णा उसको हाथ धरकर भोजनभाण्डारके भीतरसे बाहर खींच लाईं। वे बोलीं, "अरी पागल लड़की! देखती हूँ कि तू आज जान ही दे देगी। जरा सुस्ता ले और कुछ खा-पी ले।" चारों तरफ लोगोंका आना जाना जारी था। अन्नपूर्णादेवीकी मूर्ति उज्ज्वल शोभासे हँस रही थी। सावित्री अपने माथेका पसीना पोंछ, आँचलसे मुँहपर हवा करने लगी। इसी समय द्वारपर आकर किसीने पुकारा, "भीतर कौन है, जरासा माताका चरणामृत दे दो, बड़ी प्यास माऌम होती है।" झाँककर सावित्रीने देखा, विश्वेश्वर ही द्वारपर खड़े हैं। उनका सारा शरीर भोजन-व्यंजनोंसे लथपथ हो रहा है और परिश्रमके मारे सारी देहसे पसीना छूट रहा है।

जब विश्वेश्वरने देखा कि और कोई नहीं है तब वे मन्दिरके भीतर चले गये। सावित्री अपने आँचलसे स्वामीको हवा करने लगी और बोली, "तुम क्यों इतनी मेहनत कर रहे हो?"

"और तुम?" कहकर विश्वेश्वर हँसे। सावित्रीने जल्दीसे देवीका चरणामृत और थोड़ासा शरबत लाकर स्वामीको दिया। उसे पीकर विश्वेश्वर मधुर कण्ठसे बोले, "सावित्री! आज कौन दिन है, कुछ याद है?"

"हाँ" कहकर सावित्री हँसी।

"आज मैं इतनी भीड़भाड़में हूँ, तो भी रह-रहकर वही बात याद आती है। अच्छा, सावित्री! यह तो कहो, अगर वे लोग ब्याहके समय वैसा टण्टा खड़ा नहीं करते, तो क्या होता?"

"कै दफे एक ही बात पूछोगे? अच्छा होता, खूब होता!"

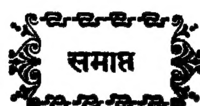
"क्या मेरे अकेलेका ही खूब होता? आपका कुछ नहीं? महाशया तो बड़ी साध्वी हैं।"

सावित्री स्निग्धनेत्रोंसे स्वामीकी ओर देखती हुई बोली, "इस समय मैं भी वही सोचती हूँ, पर उस समय तो मैं सचमुच ही जड निर्जीवके समान हो रही थी। अगर उस समय वह घटना हो जाती, तो मुझे उसका कुछ भी हानि लाभ न मालूम होता। उस समय मुझे तो यही बड़ा भारी लाभ मालूम होता था कि माँ एक बड़ी भारी चिन्तासे छुट्टी पा रही हैं। उस समय मेरे मनमें न और कोई आशा या वासना थी और न करनेकी शक्ति ही थी।"

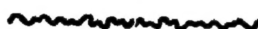
विश्वेश्वर निर्निमेष लोचनोंसे उस प्रेममयी भावमयी मूर्तिकी ओर देखते हुए मन-ही-मन कहने लगे "तुम ऐसी सन्यासिनी न होतीं तो अपने इस अज्ञानाच्छन्न मृत स्वामीको नया जीवन कैसे दे सकतीं?"

इसी समय सौम्यमूर्ति अन्नपूर्णा गोदमें एक छोटासा कुन्द-कलीसा बालक लिये आईं और उसे सावित्रीकी गोदमें देते हुए बोलीं, "रोते रोते लड़केका गला सूख गया और तुम्हें कोई खबर ही नहीं! ऐसी माँ तो मैंने कहीं नहीं देखी!"

विश्वेश्वर लजाकर दूसरे दरवाजेसे भागे। उन्होंने जाते जाते एक बार ललचाये लोचनोंसे मन्दिरके भीतर देखा—अन्नपूर्णाके मन्दिरकी प्रेममयी प्रतिमा मातृत्वकी पूर्ण मूर्तिसे जगत्में अजस्र स्नेहधारा बरसा रही है।



श्रीमती निरुपमादेवीके अन्य ग्रन्थ ।



श्रीमती निरुपमादेवी जिनका लिखा हुआ यह 'अन्नपूर्णाका मन्दिर' है, सिद्धहस्त उपन्यासलेखिका हैं। इस उपन्यासको जो पढ़ चुकेंगे, वे अनुभव कर सकेंगे कि उनकी लेखनीमें कितनी शक्ति है। स्त्रियोंके हृदयका वास्तविक चित्र खींचनेमें वे अद्वितीय हैं और उनके प्रत्येक चित्रमें भारतीय सभ्यताके प्रत्यक्ष दर्शन हो जाते हैं। बंगालमें वे अद्वितीय लेखिका गिनी जाती हैं और जगत्प्रसिद्ध महाकवि रवीन्द्रबाबू तक उनके प्रशंसक हैं। हम उनके प्रायः सभी अच्छे अच्छे उपन्यासोंको प्रकाशित करनेका प्रबन्ध कर रहे हैं।

१–विधाताके अंक

यह उनके 'विधि-लिपि' नामक उपन्यासका अनुवाद है। हम दावेके साथ कहते हैं कि आपने अब तक ऐसा अच्छा और इस ढंगका उपन्यास न पढ़ा होगा। यह जैसा ही उत्कण्ठावर्धक और घटनावैचित्र्यमय है वैसा ही भावपूर्ण और मार्मिक भी है। लगभग ५०० पृष्ठके ग्रन्थका मूल्य ढाई रुपया होगा। फरवरी १९२८ तक प्रकाशित हो जायगा।

२–श्यामली

यह उपन्यास भी शीघ्र प्रकाशित होगा। इसकी नायिका अन्धी है और उसका चरित्र-चित्रण ऐसा अद्भुत हुआ है कि पढ़ते ही बनता है। मूल्य लगभग २॥)

३–सर्वस्व समर्पण

यह 'दिदि' का अनुवाद है और अन्यत्रसे प्रकाशित हुआ है। मूल्य ४), सजिल्दका ४॥)

संचालक—

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।